सहजानंद शास्त्रमाला

गुणस्थान दर्पण

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

गुणस्थान दर्पण

रचयिता—
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ गुरुवर्य्य पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक:—
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ—१।
(उत्तर प्रदेश)

तृतीय संस्करण १०००] सन् १९६६ [लागत ८) रु०

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्म-कीर्तन

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम ।
ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ।।टेक।।

[१]

मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ रागवितान ।।

[२]

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।

[३]

सुख-दुख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ।।

[४]

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचूं निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।

[५]

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, "सहजानन्द" रहूँ अभिराम ।।

।। ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।।

गुणस्थान दर्पण

गुणस्थानेषु सर्वेषु गतानामाश्रयं शिवम् ।
अभिन्नं सहजं सिद्धं चित्स्वभावं नमाम्यहम् ।।१।।

यह जगत्—अनंतानंत जीव, अनन्तानंत पुद्गल, ए[illegible] धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य, असंख्यात कालद्र[illegible] इन सब अनन्तानंत पदार्थोंका समूह है ।

पदार्थ वह होता है जो अनादि, अनन्त, स्वतःसिद्ध है [illegible] परसे अत्यन्त भिन्न और अपनेमें अभिन्न है । पदार्थ अपने [illegible] द्रव्य, प्रदेश, परिणति और शक्तिसे हैं, किसी भी अन्यके द्रव्य, प्रदेश, परिणति और शक्तिसे नहीं हैं । पदार्थ प्रतिसमय परिणमन करते रहते हैं । जो परिणमन है उसे पर्याय कहते हैं । जिस शक्तिका परिणमन है उसे गुण कहते हैं और एकाश्रित सर्व गुणोंका जो अभिन्न आधार है उसे पदार्थ या द्रव्य कहते हैं । उक्त सब पदार्थोंमें ये लक्षण निर्विवाद हैं ।

इन सब पदार्थोंमें जीव भी द्रव्य है और वे अनन्तानंत हैं । प्रत्येक जीव अनंतशक्त्यात्मक है, शक्तिको गुण कहते हैं ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यहाँ यह निश्चय करना चाहिये कि प्रत्येक जीवमें अनन्त गुण हैं, उन सब गुणोंमें प्रधान गुण यहाँ ३ विवक्षित हैं—दर्शन ज्ञान और चारित्र। इनमेंसे ज्ञान गुणका विकार नहीं होता, किन्तु ज्ञानका कम होना, अधिक होना, पूर्ण होना ये दशायें होती हैं। ज्ञानके कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन अप्रशस्त प्रकार मिथ्यात्व व अनंतानुबंधीके साहचर्यसे उपचारसे कहे गये हैं। विकार तो दर्शन और चारित्रगुणमें होता है और वही पश्चात् विकाररहित भी शुद्ध परिणमता है।

दर्शन श्रद्धा व प्रतीतिको कहते हैं और चारित्र परिणमन में रत होने को कहते हैं। जीवमें दर्शन, चारित्रका तीव्र विकार भी होता है, मंद विकार भी होता है। कभी दर्शनका शुद्ध परिणमन होता और चारित्रका विशेष विकार होता है व मंद विकार होता है, कहीं दर्शन चारित्र दोनोंका शुद्ध परिणमन हो जाता है आदि विशेषताओंसे इन गुणोंके विविध परिणमन हो जाते हैं। इन गुणों इन सब परिणमनोंको नाना स्थानीय परिणमन कहते हैं, जिन्हें गुणस्थान शब्दसे संज्ञित करते हैं।

ये गुणस्थान अनगिनते हैं, तथापि इनको समझनेके लिये इन परिणमनोंको किसी अपेक्षासे समस्त भावोंका संग्रह करके १४ प्रकार वीतराग महर्षियोंने सर्वज्ञपरम्परासे बताये हैं। इन्हीं गुणस्थानोंके विषयमें सिद्धान्तसे अपरिचित बन्धुवों

को भी इसका परिज्ञान हो, इस भावनाको साथ लेकर अपने उपयोगको दुरुपयोगतासे बचानेके लिये यह यत्न है। इसमें कोई कठिनता अनुभव कर इस विषयसे विमुख न हो जायें इस कारण संक्षेपसे ही वर्णन किया जावेगा।

गुणस्थान—मोह और योगके निमित्तसे होने वाली आत्माके दर्शन और चारित्र गुणकी अवस्थावोंको गुणस्थान कहते हैं। इन गुणस्थानोंमें कोई तो मोहके उदयसे होते हैं, कोई मोहके उपशमसे होते हैं, कोई मोहके क्षयोपशमसे और मोहके क्षयसे व कोई मोहकी अनपेक्षासे तथा कोई योगके सद्भावसे और कोई योगके अभावसे होता है। इन सभी प्रकारों को निमित्त कहते हैं, अतः कहीं निमित्त सद्भावरूप है और कहीं निमित्त अभावरूप है। गुणस्थान १४ इस प्रकार हैं—१—मिथ्यात्व, २—सासादनसम्यक्त्व, ३—सम्यग्मिथ्यात्व, ४—अविरत सम्यक्त्व, ५—देशविरत, ६—प्रमत्तविरत, ७—अप्रमत्तविरत ८—अपूर्वकरण, ९—अनिवृत्तिकरण, १०—सूक्ष्मसाम्पराय, ११—उपशांतकषाय, १२—क्षीणकषाय, १३—सयोगकेवली, १४—अयोगकेवली। इनमें उपशमश्रेणीपर चढ़ने वाले साधुओंके परिणामोंका नाम भी अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय है और क्षपकश्रेणीपर चढ़ने वाले साधुओंके परिणामोंके नाम भी अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय हैं। गुणस्थानका दूसरा नाम जीवसमास भी है। जिसमें जीव भले प्रकार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

रहते हैं उन्हें जीवसमास कहते हैं। जीव गुणोंमें भावोंमें रहते हैं, वे गुण ५ हैं—औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक व पारिणामिक। कर्मोंके उदयसे होने वाले भावको औदयिक भाव कहते हैं। कर्मोंके उपशमसे होने वाले भावको औपशमिक-भाव कहते हैं। कर्मोंके क्षयोपशमसे होने वाले भावको क्षायोपशमिक कहते हैं और कर्मोंके क्षयसे होने वाले भावको क्षायिक भाव कहते हैं। जो कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय क्षयोपशमकी अपेक्षाके बिना उत्पन्न होता है उस भावको पारिणामिक कहते हैं। इन भावोंके साहचर्यसे आत्माकी भी गुणसंज्ञा होती है। उक्त गुणस्थानोंमें ये भाव हैं।

इन गुणस्थानोंके योगसे आत्माके पूर्ण नाम इस प्रकार होते हैं—१. मिथ्यादृष्टि, २. सासादनसम्यग्दृष्टि, ३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि, ४. असंयतसम्यग्दृष्टि, ५. संयतासंयत, ६. प्रमत्त-संयत, ७. अप्रमत्तसंयत, ८. अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयत उपशमक व अपूर्वकरणप्रविष्ट शुद्धिसंयत क्षपक, ९. अनिवृत्तिकरण-बादरसाम्परायिकप्रविष्टशुद्धिसंयत उपशमक व अनिवृत्तिबादर-साम्परायिकप्रविष्टशुद्धिसंयत क्षपक, १०. सूक्ष्मसाम्परायिक-प्रविष्टशुद्धिसंयत उपशमक व सूक्ष्मसाम्परायिकप्रविष्टशुद्धिसंयत क्षपक, ११. उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ, १२. क्षीणकषाय-वीतरागछद्मस्थ, १३. सयोगकेवली, १४. अयोगकेवली।

अब इन गुणस्थानोंका व गुणस्थानवर्ती आत्मावोंके

http://www.jainkosh.org

स्वरूपका क्रमशः विवरण करेंगे, उनमें प्रथम मिथ्यात्व गुण-स्थानको कहते हैं—

मिथ्यात्व गुणस्थान

मिथ्यात्वप्रकृतिनामक दर्शनमोहनीय कर्मके उदयसे वस्तु-स्वरूपके यथार्थ श्रद्धान न होनेको मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्वके असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं तथापि कुछ समान जाति की अपेक्षासे वीतराग महर्षियोंने संग्रह करके ५ भेद कहे हैं—१. ऐकान्तिक मिथ्यात्व, २. सांशयिक मिथ्यात्व, ३. विपरीत मिथ्यात्व, ४. वैनयिक मिथ्यात्व, ५. अज्ञान मिथ्यात्व।

अनंतधर्मात्मक वस्तुके अन्य भावोंको छोड़कर किसी भी धर्मको (भावकी) श्रद्धा करना ऐकान्तिक मिथ्यात्व है। वस्तु-स्वरूपमें संशय करना सांशयिक मिथ्यात्व है। वस्तुस्वरूपसे विपरीत विश्वास करना विपरीत मिथ्यात्व है। देव कुदेव, शास्त्र कुशास्त्र, गुरु कुगुरु आदि सभीको समान समझकर विनय व श्रद्धान करना वैनयिक मिथ्यात्व है। हित अहितके विवेकका अभाव अज्ञान मिथ्यात्व है।

संस्कारसे सभी मिथ्यादृष्टियोंके पांचों मिथ्यात्व हैं, परन्तु व्यावहारिक अभिव्यक्तिकी अपेक्षासे देखा जावे तो क्रमशः सांशयिक मिथ्यात्व, ऐकान्तिक मिथ्यात्व, वैनयिक मिथ्यात्व, विपरीत मिथ्यात्व व अज्ञान मिथ्यात्व वाले जीव अधिक अधिक हैं। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय असंज्ञी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पंचेन्द्रिय जीवोंमें अज्ञानमिथ्यात्वकी विशेषता है। सेनी पञ्चेन्द्रिय जीवोंमें पांचोंकी विशेषता हो सकती है। उपयोगमें एक समयमें एक मिथ्यात्व रहता है। मिथ्यात्वके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

अपनेसे सर्वथा भिन्न धन मकान पुत्र मित्र स्त्री आदिको अपने समझना मिथ्यात्व है, क्योंकि पदार्थका जैसा स्वरूप है वैसा विश्वास न हुआ।

शरीरका स्वरूप जीवोंसे बिल्कुल जुदा है, फिर भी शरीरको जीव समझना मिथ्यात्व है, क्योंकि पदार्थका जैसा स्वरूप है वैसा विश्वास नहीं हुआ।

क्रोधादिकषाय जीवस्वरूप नहीं हैं किन्तु क्षणिक विकार हैं उनको अपना स्वरूप समझना मिथ्यात्व है, क्योंकि पदार्थ का जैसा स्वरूप है वैसा विश्वास नहीं हुआ।

विकार व अविकार सब अवस्थायें हैं, उन्हें जीव वस्तु समझना मिथ्यात्व है, क्योंकि पदार्थका जैसा स्वरूप है वैसा विश्वास नहीं हुआ।

खोटे देव, खोटे शास्त्र, खोटे गुरुकी सेवा करनी, देवी दहाडी, होली आदि पूजना मिथ्यात्व है, क्योंकि पदार्थका जैसा स्वरूप है वैसा विश्वास न हुआ। इस प्रकार अन्य प्रकारके सब भाव जो आत्मस्वभावसे भिन्न हैं उनमें रुचि प्रतीति हित-बुद्धि करना सब मिथ्यात्व है।

जिनमें मिथ्यात्व पाया जाता है उन्हें मिथ्यादृष्टि कहते हैं। मिथ्यादृष्टि जीवोंकी विशेष जानकारीके लिये विवरण सहित मिथ्यादृष्टियोंके कुछ प्रकार कहते हैं।

अनंत मिथ्यादृष्टि—जिसको न तो अभी तक कभी सम्यग्दर्शन हुआ और न कभी भविष्यमें होगा, वह अनादि अनंत मिथ्यादृष्टि है। इसके अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ व मिथ्यात्व—इन सम्यक्त्वविरोधक ५ प्रकृतियोंकी सत्ता है व शेष चारित्रमोहनीयकी २१ की सत्ता है। इस प्रकार मोहकी २६ प्रकृतियोंकी सत्ता रहती है। इसके तीर्थंकर व आहारक शरीर व आहारक अङ्गोपाङ्गकी भी सत्ता नहीं रहती। ये अभव्य या दूरातिदूर भव्य होते हैं, अभव्य व दूरातिदूर भव्य अनादि अनंत मिथ्यादृष्टि ही होते हैं।

अनादि सान्त मिथ्यादृष्टि—जिनके अब तक कभी सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं हुआ किन्तु भविष्यमें सम्यक्त्व उत्पन्न होगा वे अनादि सांत मिथ्यादृष्टि हैं। इनके भी पूर्ववत् ५ + २१ = २६ मोहनीय प्रकृतियोंकी सत्ता है तथा तीर्थंकर प्रकृति व आहारकद्विककी सत्ता नहीं है। ये निकटभव्यमिथ्यादृष्टि या दूरभव्य मिथ्यादृष्टि होते हैं।

२८ मोह प्रकृतियोंकी प्रथम सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि—अनादि मिथ्यादृष्टि अधःकरण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण परिणाम द्वारा उक्त ५ प्रकृतियोंका उपशम करके जब प्रथमोपशम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

...न्न करते ही सम्यग्दृष्टि बन जाता है तो प्रथमोपशम ...क्त्वके प्रथम समयमें ही मिथ्यात्वके ३ भाग हो जाते हैं। ...र्गणायें मिथ्यात्व रूप ही रहती हैं, कुछ सम्यग्मिथ्यात्व ...और कुछ सम्यक्प्रकृति रूप हो जाती हैं और ये सब ...पशम सम्यक्त्वके काल तक दबी हुई (उपशांत) ही ...हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्वका काल अन्तर्मुहूर्त है, सो ...हूर्त पश्चात् जब वह प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी विराधना ...थ्यात्व गुणस्थानमें पहुंचता है तब वह उक्त ५ प्रकृ... ...व सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति तथा चारित्रमोहनीय ...२१, इस तरह २८ मोहप्रकृतियोंकी प्रथम सत्ता वाला ...दृष्टि कहलाता है। अब यह सादि मिथ्यादृष्टि जीव हो

...७ की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि—२८ की सत्ता वाले ...ष्टिको जब मिथ्यात्वमें कुछ अधिक काल व्यतीत हो तब सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना (बदलना) हो कर वह ...थ्यात्वप्रकृतिरूप हो जाती है, पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्व ...लना होकर वह मिथ्यात्वरूप हो जाती है। जब सम्यक्... ...की उद्वेलना हो चुकती है और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वे... हो पावे तब वहाँ वह २७ मोहनीय प्रकृतिकी सत्ता ...थ्यादृष्टि कहलाता है। यह भी सादि मिथ्यादृष्टि है।

...मोह प्रकृतिकी सत्ता वाला सादि मिथ्यादृष्टि—जब

सम्यग्मिथ्यात्वकी भी उद्वेलना होकर वह मिथ्यात्वप्रकृतिरूप हो जाती है तब अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ व मिथ्यात्वप्रकृति तथा चारित्रमोहनीयकी शेष २१ प्रकृतियाँ—इस प्रकार २६ की सत्ता वाला यह मिथ्यादृष्टि है। इसे उद्वेलित मिथ्यादृष्टि भी कहते हैं।

२४ की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि—जिस मिथ्यादृष्टिने अनन्तानुबन्धी कषायकी विसंयोजना (अप्रत्याख्यावरण रूप हो जाना) करके उपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया था, वह उपशमसम्यग्दृष्टि जीव जब सम्यक्त्वसे च्युत होता है और मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय होता है वहाँ यदि अनन्तानुबन्धीकी संयोजना न हो पावे तो अनन्तानुबन्धीको छोड़कर शेष सब मोहनीयकी २४ प्रकृतिकी सत्ता वाला वह मिथ्यादृष्टि होता है। ऐसी स्थितिका समय बहुत अल्प है। यह भी सादि मिथ्यादृष्टि है। इस स्थितिमें जीवका मरण नहीं है।

अनन्तानुबन्धी उदय रहित मिथ्यादृष्टि—यह २४ की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि जब उपशमसम्यक्त्वसे च्युत हुआ था, अनन्तानुबन्धीकी सत्तासे रहित था सो अनंतानुबन्धीका उदय अब कैसे हो? इसके अनन्तानुबंधीका उदय नहीं है, अतः यह अनन्तानुबंधी उदयरहित मिथ्यादृष्टि है। यह सादि मिथ्यादृष्टि है, इसका काल अत्यल्प है। इसके अपर्याप्त अवस्था नहीं होती।

http://sahjanandvarnishastra.org/

मरणरहित मिथ्यादृष्टि—अनन्तानुबंधीकी विसंयोजना करके जो उपशमसम्यग्दृष्टि हुआ था वह यदि मिथ्यात्व गुणस्थानमें आता है तो वह अनसंयोजित मिथ्यादृष्टि मरणरहित है। इसका अन्तर्मुहूर्त तक मरण नहीं होता।

वेदकसम्यक्त्वसहित संयमासंयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि—जो वेदक सम्यक्त्व व संयमासंयम दोनोंको एक साथ उत्पन्न करने के अभिमुख मिथ्यादृष्टि हैं वे वेदक सम्यक्त्व सहित संयमासंयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि हैं। इसके अध:करण व अपूर्वकरण एक ही बारमें होते हैं।

वेदकसम्यक्त्वसहित संयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि—जो वेदक सम्यक्त्व व सकलसंयम एक साथ उत्पन्न करेंगे वे वेदकसम्यक्त्वसहित संयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि हैं। इनके भी २ ही करण होते हैं।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहित संयमासंयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि—जो प्रथमोपशम सम्यक्त्वसहित संयमासंयमको एक साथ उत्पन्न करनेके अभिमुख हैं वे प्रथमोपशमसहित संयमासंयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं। इनके दोनों कार्यके लिये एक ही बार में तीन करण होते हैं।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहित संयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि—जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित संयमासंयमको एक ही बारमें उत्पन्न करनेके अभिमुख हैं वे प्रथमोपशमसम्यक्त्व सहित संयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि हैं। इनके भी दोनों कार्यके लिये एक बारमें तीनों करण होते हैं।

वेदक योग्य मिथ्यादृष्टि—जिसने २८ मोहप्रकृतिकी सत्ता प्राप्त की है वह मिथ्यादृष्टि जब तक उद्वेलनासंक्रमणके द्वारा २७ की सत्ता नहीं कर पाता, इस बीचके कालमें इस मिथ्यादृष्टि जीवके वेदकसम्यक्त्व उत्पन्न कर लेनेकी योग्यता है, ऐसे मिथ्यादृष्टिको वेदक योग्य मिथ्यादृष्टि कहते हैं। यह सादि मिथ्यादृष्टि है।

तीर्थङ्कर प्रकृतिकी सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि—मिथ्यात्व गुणस्थानोंमें तीर्थंकर प्रकृति व आहारक शरीर, आहारकाङ्गोपाङ्ग—इन तीन प्रकृतियोंका बंध नहीं होता। किन्तु जब कोई वेदकसम्यग्दृष्टि अथवा उपशमसम्यग्दृष्टि तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करले और पश्चात् भी वह वेदक सम्यग्दृष्टि रहे। यदि उसने तीर्थंकर प्रकृतिबंधसे पहिले कभी मिथ्यात्व अवस्थामें नरकायुका बंध कर लिया हो तो वह नरकमें अवश्य उत्पन्न होगा, सो मरणकालमें सम्यक्त्व छूट जावेगा और नारक अपर्याप्त हो जावेगा। इस समय यह जीव तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि है। यह नारक अन्तमुहूर्तमें पर्याप्त होते ही अन्तर्मुहूर्त बाद वेदकसम्यग्दृष्टि हो ही जावेगा। वह जब तक वेदकसम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर लेता तब तक वह तीर्थंकरकी सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि है। यह सादि मिथ्यादृष्टि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है। यह जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि नहीं होता। किन्तु इस मिथ्यात्वसे पहिले वेदकसम्यग्दृष्टि था और उस मिथ्यात्वके बाद भी वेदकसम्यग्दृष्टि होता है।

दर्शनमोहोपशामनाप्रतिष्ठापक मिथ्यादृष्टि जीव—अधःकरण परिणामके प्रथम समयसे लेकर मिथ्यात्व व दर्शनमोहकी सर्वप्रकृतियोंके अन्तरकरण कर चुकने तक दर्शनमोहोपशामना प्रतिष्ठापक मिथ्यादृष्टि है। इसका न यहाँ मरण होता और जब तक प्रथमोपशमसम्यक्त्व रहेगा तब तक मरण नहीं होगा।

आहारकद्विककी सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि जीव—जिस सम्यग्दृष्टि जीवने आहारक शरीर, आहारकाङ्गोपाङ्गका बंध कर लिया पश्चात् सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यादृष्टि हो गया, सो जब तक आहारद्विककी उद्वेलना नहीं हो जाती तब तक आहारकद्विककी सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि है। यह सादि-मिथ्यादृष्टि है। इसके क्षायिक सम्यक्त्व नहीं था।

ऐसा कोई मिथ्यादृष्टि जीव नहीं है जिसके तीर्थंकर, प्रकृति और आहारकद्विक इन तीनोंकी सत्ता हो अर्थात् जिसके इन तीनोंकी सत्ता है वह मिथ्यात्व गुणस्थानमें नहीं आ सकता।

अगृहीतमिथ्यादृष्टि जीव—जिनके देहादिमें आत्मा मानने की बुद्धि है अथवा आत्मस्वभावका अनुभव नहीं हुआ वे अगृहीतमिथ्यादृष्टि हैं। क्योंकि इनको यह मिथ्यात्व किसीने

http://www.jainkosh.org

ग्रहण नहीं कराया है, किन्तु बिना उपदेशके हुआ। सभी मिथ्यादृष्टि अगृहीतमिथ्यादृष्टि होते हैं। एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक तो अगृहीतमिथ्यादृष्टि ही होते हैं। ये सादि मिथ्यादृष्टि व अनादिमिथ्यादृष्टि दोनों तरहके होते हैं।

गृहीतमिथ्यादृष्टि—जो कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्रको हितकारी समझते हैं व आदर पूजा करते हैं वे गृहीतमिथ्यादृष्टि हैं। सैनी पंचेन्द्रिय जीव ही गृहीतमिथ्यादृष्टि होते हैं। जो गृहीत-मिथ्यादृष्टि हैं वे अगृहीतमिथ्यादृष्टि भी नियमसे हैं तथा सैनी पंचेन्द्रियमें ऐसे भी मिथ्यादृष्टि हैं जो गृहीतमिथ्यादृष्टि नहीं हैं, अगृहीतमिथ्यादृष्टि ही हैं। गृहीतमिथ्यादृष्टि भी कोई सादि मिथ्यादृष्टि हैं और कोई अनादिमिथ्यादृष्टि भी हैं।

द्रव्यलिङ्गी मिथ्यादृष्टि—जिन्होंने निर्ग्रंन्थ गुरुका लिङ्ग धारण किया है, परन्तु भाव मिथ्यात्व गुणस्थानके हैं वे द्रव्य-लिङ्गी मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं। ये सादिमिथ्यादृष्टि भी होते हैं और अनादि मिथ्यादृष्टि भी होते हैं। ये अगृहीतमिथ्यादृष्टि हैं।

सातिशय मिथ्यादृष्टि—अधःकरण, अपूर्वकरण व अनि-वृत्तिकरण करने वाले मिथ्यादृष्टि सातिशय मिथ्यादृष्टि कह-लाते हैं, ये सम्यक्त्वके अतिनिकट अभिमुख होते हैं। ये भव्य मिथ्यादृष्टि ही हैं, अभव्यमिथ्यादृष्टि नहीं।

लब्धोनलब्धिक मिथ्यादृष्टि—मिथ्यात्वगुणस्थानमें क्षयो-पशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि व करण-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लब्धि—ये पांच लब्धियां हो जाती हैं, जिनमें करणलब्धि वाला तो सम्यक्त्वके अभिमुख है वह तो सातिशय मिथ्यादृष्टि है, किन्तु जिनके शेष १ या २ या ३ या चारों लब्धियां प्राप्त हुई वह आगे बढ़ भी सकता है, नहीं भी बढ़ सकता है तथा ये भव्यके भी होती हैं और अभव्यके भी हो सकती हैं। इन्हें लब्धोनलब्धिक मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि, करणलब्धि, ये पांच लब्धियां मिथ्यात्व गुणस्थानमें होती हैं। करण तो सम्यक्त्व होनेके पश्चात् भी कई कार्योंके लिये होते हैं, परन्तु यहाँ करणलब्धिसे प्रयोजन सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके लिये मिथ्यादृष्टिके अत्यन्त अपूर्व परिणामोंसे है।

क्षयोपशमलब्धि—जिस समय विशुद्धिके द्वारा ऐसी शक्ति प्रकट हो जाती है कि पूर्व कर्मोंके अनुभागस्पर्द्धक प्रतिसमय अनन्त गुणहीन हो होकर उदीरणाको प्राप्त होते रहते हैं उस समयके क्षयोपशमकी प्राप्तिको क्षयोपशमलब्धि कहते हैं, यह उत्थानके लिये प्रथम कदम है।

विशुद्धिलब्धि—क्षयोपशमलब्धिसे अनन्त गुणहीन हो होकर अनुभागस्पर्द्धकोंकी उदीरणा होनेसे जीवका विशुद्ध परिणाम उत्पन्न होता है उसे विशुद्धिलब्धि कहते हैं। इस परिणामसे शुभ कर्मोंके बंधकी विशेषता होती है और अशुभ कर्मोंके बंधकी हानि होती है।

देशनालब्धि—आचार्य आदिके द्वारा तत्त्वोंके उपदेशोंकी प्राप्तिको और उपदेश किये गये अर्थके धारण और विचारण की शक्तिकी प्राप्तिको देशनालब्धि कहते हैं।

प्रायोग्यलब्धि—सर्व कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका घात करके मात्र अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति कर देने और उत्कृष्ट अनुभागका घात करके द्विस्थानीय (मंद) अनुभाग कर देनेको प्रायोग्यलब्धि कहते हैं। इसमें ३४ बंधापसरण होते हैं, इनका वर्णन चौथे गुणस्थानोंके प्रकरणमें करेंगे तथा करणलब्धिका भी वर्णन आगे गुणस्थानोंके प्रकरणमें करेंगे।

इसी प्रकार अन्य-अन्य अनेक अपेक्षावोंसे अनेक प्रकारके मिथ्यादृष्टि होते हैं। विस्तारभयसे इस विषयको यहीं समाप्त करते हैं और अन्य प्रकारकी कुछ विशेषतायें विवृत करते हैं।

मिथ्यादृष्टि जीव तीसरे, चौथे, पांचवें व सातवें गुणस्थान में जा सकता है। पाँचवें गुणस्थानमें जावेगा तो सम्यक्त्व व देशव्रत एक साथ होता है। सातवें गुणस्थानमें जावेगा तो उपशम सम्यक्त्व या वेदक सम्यक्त्व व महाव्रत एक साथ हो जावेगा।

छठवें, पांचवें, चौथे, तीसरे, दूसरे गुणस्थानसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें जीव आ सकता है। छठवेंसे आनेपर महाव्रत व सम्यक्त्वकी एक साथ विराधना होगी। पांचवेंसे आनेपर देशव्रत व सम्यक्त्वकी एक साथ विराधना होगी।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मिथ्यात्व गुणस्थानमें मरण करके चारों गतियोंमें उत्पन्न होते हैं, परंतु देवोंमें वे ग्रैवेयकसे ऊपर उत्पन्न नहीं होंगे अर्थात् ६ अनुदिश, ५ अनुत्तरोंमें सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते। ग्रैवेयकमें निर्ग्रन्थ लिङ्गमें साधना करने वाले ही उत्पन्न होते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें प्रथमोपशम सम्यक्त्व, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व या वेदक सम्यक्त्वसे च्युत होकर आ सकते हैं, किन्तु क्षायिकसम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वमें नहीं आ सकते हैं, क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व कभी भी नष्ट नहीं होता।

मिथ्यात्व गुणस्थान मोहके निमित्तसे होता है, अर्थात् मिथ्यात्वप्रकृति नामक मोहनीय कर्मके उदयसे होता है, अतएव इस गुणस्थानमें भाव भी औदयिक भाव है।

इस गुणस्थानमें सादिमिथ्यादृष्टि जीवको ऐसी भी स्थिति रहती है कि सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्प्रकृतिका उदयाभावी क्षय और इन्हींका सदवस्थारूप उपशम व मिथ्यात्वका उदय है, किन्तु इससे भी वह क्षायोपशमिकरूप नहीं कहला सकता, क्योंकि प्रथम तो ये बातें अनादिमिथ्यादृष्टि व उद्वेलित मिथ्यादृष्टिके न होनेसे सबमें व्याप्त नहीं हैं, दूसरी बात यह है कि मिथ्यात्व कार्यमें निमित्त मिथ्यात्वका उदय है।

मिथ्यात्व गुणस्थान अनाहारक, लब्ध्यपर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त व पर्याप्त—इन चारों प्रकारके जीवोंमें संभव है। अयोग-

http://www.jainkosh.org

केवली गुणस्थानी जीव पर्याप्त अनाहारक है और सिद्धजीव अतीतपर्याप्त अनाहारक है, इनके अतिरिक्त शेष सब अनाहारक जीव अपर्याप्त कहलाते हैं और लब्ध्यपर्याप्त व निवृत्यपर्याप्त भी अपर्याप्त कहलाते हैं, परन्तु जिन जीवोंको पर्याप्त होना है उनके अनाहारक और निवृत्यपर्याप्त अवस्थामें भी पर्याप्तनामकर्मका उदय है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें जीवसमास १४ होते हैं, क्योंकि बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्मएकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञीपञ्चेन्द्रिय—इनके पर्याप्त और अपर्याप्त दोनोंमें मिथ्यात्व गुणस्थान संभव है। परन्तु एक जीवके एक जन्ममें एक ही जातिके अपर्याप्त और पर्याप्त ये दो जीव समास होते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें पर्याप्ति ६ होती हैं। एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रियमें अपर्याप्त व पर्याप्त अवस्थामें ४ अपर्याप्ति, ४ पर्याप्ति। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रियमें पांच अपर्याप्ति, पांच पर्याप्ति होती हैं। सैनी पञ्चेन्द्रियमें ६ अपर्याप्ति व ६ पर्याप्ति होती हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें प्राण १० होते हैं। एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रियके अपर्याप्त व पर्याप्त अवस्थाओंमें ३ व ४ प्राण होते हैं। द्वीन्द्रियके ४ व ६ प्राण होते हैं। त्रीन्द्रियके ५ व ७ प्राण होते हैं। चतुरिन्द्रियके ६ व ८ प्राण होते हैं। असं-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञीपञ्चेन्द्रियके ७ व ६ प्राण होते हैं और संज्ञीपञ्चेन्द्रियके ७ व १० प्राण होते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें संज्ञा ४ होती हैं। यदि एकेन्द्रिय आदि भी हैं तो भी संज्ञावोंकी निवृत्ति नहीं है, उनके भी संस्कार पड़ा हुआ है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें गति ४ होती हैं—चारों गतियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं। ये मिथ्यात्व गुणस्थानमें मरकर भी चारों गतियोंमें जा सकते हैं। एक जन्ममें एक ही गति होती है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें पाँचों प्रकारकी जाति हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियं, पंचेन्द्रिय। मरणके बाद विग्रहगति तकमें भी ये जाति रहती हैं। एक जीवके एक जन्म में एक जाति रहती है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें छहों काय हैं—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक। मिथ्यात्वमें मरण करके भी छहों कायोंमें से किसीमें भी जीव उत्पन्न हो सकते हैं। एक जन्ममें एक जीवके एक काय होता है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें १३ योग होते हैं, आहारकयोग व आहारकमिश्रकाययोग नहीं होते। ये छठे गुणस्थानमें ही हो सकते हैं। एक जीवके योग्यतामें ११ होते हैं, क्योंकि वैक्रियक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

काययोग व वैक्रियक मिश्रकाययोग हों तो औदारिक वाले २ योग नहीं होते और औदारिक २ हों तो वैक्रियक वाले २ नहीं होते हैं। अपर्याप्त अवस्थामें ३ योग होते हैं, किन्तु एक जीवके २ या १ होता है। पर्याप्त अवस्थामें १० योग होते, परन्तु एक जीवके ९ की ही योग्यता है, क्योंकि देव नारकीके वैक्रियक काययोग होता है और मनुष्य तिर्यञ्चके औदारिककाययोग होता है। योग वाले सभी जीवोंमें एक समयमें एक ही योग होता है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें ३ वेद होते हैं—यह भाववेदकी अपेक्षा कथन है। एक जीवके एक जन्ममें एक ही वेद होता है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें कषायें २५ होती हैं। एक जीवके अनन्तानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन सम्बंधी सदृश एक-एक कषाय = ४ हास्यद्विकमें २, भय १, जुगुप्सा १, वेद १ इस तरह ९ हुईं। किसीके ४ + २ + १ + ० + १ = ८। किसीके ४ + २ + ० + १ + १ = ८। किसीके ४ + २ + ० + ० + १ = ७। किसीके ३ + २ + ० + ० + १ = ६ भी कषाय हो सकती हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें ज्ञान ३ होते हैं—कुमति, कुश्रुत, कुअवधि। किसीके २ ही होते हैं—कुमति, कुश्रुत। परन्तु एक जीवके एकदा एक ही ज्ञानोपयोग होता है। अपर्याप्त अवस्थामें कुअवधि नहीं होता।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें असंयम ही होता।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें दर्शन चक्षुदर्शन व अचक्षुदर्शन ये दो होते हैं। विभंगावधि कुमतिज्ञानपूर्वक होता व उसमें अवधिदर्शन नहीं होता तथा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय जीवके चक्षुदर्शन भी नहीं होता। एकदा एक जीवके एक ही दर्शनोपयोग होता है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें ६ लेश्यायें हो जाती हैं। शुक्ल-लेश्या तकके परिणाम मिथ्यात्वमें भी व अनन्तानुबंधी कषायमें भी हो जाते हैं। एक जीवके एक समयमें एक ही लेश्या होती है। एकेन्द्रियसे असैनीपञ्चेन्द्रिय तक तीन अशुभ लेश्यायें ही हो सकती हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें भव्य भी होते हैं और अभव्य भी होते हैं। जो जीव भव्य है वह भव्य ही कहलाता जब तक सिद्ध न हो जाय। सिद्ध होनेपर न भव्य है, न अभव्य है। जो जीव अभव्य होता वह सदा अभव्य ही रहेगा।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें सम्यक्त्वमार्गणामें मिथ्यादृष्टि ही होता है, मिथ्यात्व गुणस्थानमें संज्ञी भी होते हैं और असंज्ञी भी होते हैं। जो जीव संज्ञी है उस जन्ममें संज्ञी ही रहेगा व जो असंज्ञी है वह असंज्ञी ही रहेगा।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें आहारक भी होता है और अनाहारक जीव भी होता है। यह जीव विग्रह गतिमें ही अनाहारक रहता है, शेष समय आहारक ही रहता है। मिथ्यात्व गुणस्थानमें उपयोग दोनों होते हैं, किन्तु युगपत् नहीं होते।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें ध्यान ८ होते हैं, वे ये हैं आर्तध्यान ४ और रौद्रध्यान ४। एक समयमें एक ही ध्यान होता है। योग्यता सब इन आठोंकी रहती है।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें आस्रव ५५ हैं, मिथ्यात्व ५, अविरति १२, कषाय २५, योग १३। एक जीवके आस्रव कमसे कम १० और अधिकसे अधिक १८ होते हैं, मध्यके ११-१२-१३-१४-१५-१६-१७ प्रकारके भी आस्रव एक-एक जीवके होते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानमें भाव औदयिक, क्षायोपशमिक व पारिणामिक भावके प्रभेदोंकी अपेक्षासे ३२ होते, किन्तु एक जीवकी अपेक्षा पर्याप्तमें २१ से २७ तक व अपर्याप्तमें २० से २७ तक होते हैं।

मिथ्यादृष्टि जीवोंका देह घनांगुलके असंख्यातवें भागसे लेकर एक हजार योजन तककी अवगाहनाका होता है।

मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानंत हैं, अक्षयानंत हैं। मनुष्यगतिके मिथ्यादृष्टि संख्यात हैं, उनसे असंख्यातगुणे नारकी मिथ्यादृष्टि हैं, उनसे असंख्यातगुणे देव मिथ्यादृष्टि हैं, उनसे अनंतगुणे तिर्यंच मिथ्यादृष्टि हैं।

मिथ्यादृष्टि जीव समस्त लोकमें रहते हैं, क्योंकि लोक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मिथ्यादृष्टि जीवोंसे भरा है। ऐसा कोई लोकका प्रदेश नहीं जहाँ अनन्त मिथ्यादृष्टि न बसते हों, किन्तु विहार करने वाले मिथ्यादृष्टि सर्वलोकमें नहीं हैं, क्योंकि विहार केवल त्रस जीव ही करते हैं जो कि कुछ कम त्रसनाली (१४ राजू) में रहते हैं। त्रसोंमें भी पर्याप्त त्रस विहार करते हैं, वे भी सब नहीं करते हैं; फिर भी विहार कुछ समयको ही करते हैं, अधिक समय आवास स्थानपर रहते हैं। मिथ्यादृष्टि देव विक्रियासे गमनागमन करें तो करीब इतने ही क्षेत्रमें विहार करते हैं।

मिथ्यादृष्टि जीव सदाकाल रहते हैं। किन्तु एक जीवकी अपेक्षासे मिथ्यात्व जघन्यसे तो अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहता है और उत्कृष्टसे (१४ अन्तर्मुहूर्त कम) अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल होता है। ये १४ अन्तर्मुहूर्त भी एक अन्तर्मुहूर्तमें गर्भित हैं। कोई जीव तीसरे या चौथे या पांचवें या छठेसे जीव मिथ्यात्व में आवे, वहाँ जघन्य अन्तर्मुहूर्त रहकर फिर तीसरे या चौथे या पांचवें या सातवेंमें चला जावे तो बीचमें जो मिथ्यात्व आया था वह सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त रहा। दूसरे गुणस्थानसे गिरकर मिथ्यात्वमें आवे और फिर तीसरे या चौथे आदिमें पहुंचे ऐसे जीवको मिथ्यात्वमें सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तमें अधिक समय लगता, क्योंकि अधिक संक्लेश परिणामसे मिथ्यात्वमें आया था। उत्कृष्ट काल इस प्रकार लगता है कि अनादि मिथ्यादृष्टि कोई जीव अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकालके शेष रहनेपर प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और अन्तर्मुहूर्त रहकर सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वमें आ गया, मिथ्यात्वमें ही भ्रमता रहा, अन्तमें जब अन्तर्मुहूर्त शेष रहा जिसमें १३ अंतर्मुहूर्त हैं उसमें सम्यक्त्व चारित्रकी साधना करके सिद्ध हो गया, सो १ अन्तर्मुहूर्त तो सबसे पहिलेके सम्यक्त्वमें लगा था जिसके बाद मिथ्यात्व हुआ और १३ ये। यों १४ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल सादिमिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल है।

अपूर्व पुरुषार्थके वे १३ अन्तर्मुहूर्त इस प्रकार हैं—(१) प्रथमोपशमसम्यक्त्वमें, (२) वेदकसम्यक्त्वमें, (३) अनंतानुबंधी के विसंयोजनमें, (४) दर्शनमोहके क्षयमें, (५) अप्रमत्तसंयतमें, (६) प्रमत्त अप्रमत्तमें सहस्रों बार परिवर्तनमें, (७) सातिशय अप्रमत्तमें, (८) अपूर्वकरण क्षपकमें, (९) अनिवृत्तिकरण क्षपक में, (१०) सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकमें, (११) क्षीणकषायमें, (१२) सयोगकेवलीमें, (१३) अयोगकेवलीमें। इसके पश्चात् सिद्ध हो गया।

मिथ्यादृष्टि जीव यदि मिथ्यात्व गुणस्थानको छोड़कर फिर जल्दी मिथ्यात्वमें आवे तो वह बीचका अन्तर अल्प अन्तर्मुहूर्त है। एक ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव जो पहिले, तीसरे, चौथे, पांचवें, सातवें, छठेंमें बहुत बार परिवर्तन कर-करके मिथ्यादृष्टि हुआ, वह सम्यक्त्वको प्राप्त करके अल्प अंतर्मुहूर्त सम्यक्त्वमें रहकर मिथ्यात्वमें आ जाता है, सो यही जघन्य अंतर है। जो संयम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

व सम्यक्त्वमें बहुत-बहुत रहकर मिथ्यादृष्टि नहीं हुआ और बहुत पहिलेसे ही मिथ्यात्वमें है। वह यदि सम्यक्त्व पावेगा तो इस मिथ्यादृष्टिसे अधिक जघन्यकालमें वह रहेगा।

मिथ्यादृष्टि जीव यदि मिथ्यात्व गुणस्थानको छोड़ दे और अधिक काल अन्य गुणस्थानोंमें रहकर फिर मिथ्यात्वमें आवे तो यह उत्कृष्ट अंतर अन्तर्मुहूर्त कम १३२ सागरका होता है। कोई मिथ्यादृष्टि जीव वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करे, वहाँ अन्तर्मुहूर्त कम ६६ सागर तक रहे, फिर अन्तर्मुहूर्त तीसरे गुणस्थानमें रहे, फिर वेदकसम्यक्त्व प्राप्त करे, यहाँ अन्तर्मुहूर्त कम ६६ सागर तक रहे, पश्चात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें आ जावे तो यह अन्तर अन्तर्मुहूर्त कम १३२ सागरका होता है। यहाँ विशेष ध्यान देनेकी बात यह है कि यदि कोई जीव पूरा ६६ सागर वेदकसम्यक्त्वमें रह ले तो फिर क्षायिक सम्यक्त्व ही होगा। इस कारण इस अन्तरमें अन्तर्मुहूर्त कम वेदक-सम्यक्त्वमें बताया गया है।

मिथ्यादृष्टि जीवोंमें एक जीवकी अपेक्षा गति इन्द्रिय आदि की अपेक्षासे कितने ही प्रकारसे बंधप्रकृतियां होती हैं, इसी प्रकार उदय और सत्त्वकी प्रकृतियां होती हैं तथापि सामान्यालापसे मिथ्यादृष्टिके ११७ प्रकृतिका बंध होता है। तीर्थंकर प्रकृतिनामकर्म, आहारकनामकर्म, आहारकाङ्गोपाङ्ग नामकर्म नहीं बंधता है। सब बंधयोग्य प्रकृति ११७ मानी हैं, क्योंकि

http://www.jainkosh.org

सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्प्रकृतिका तो बंध नहीं होता। और शरीर, बन्धन, संघातकी १५ प्रकृतियोंको ५ में गर्भित कर लिया और स्पर्श ८, रस ५, गंध २, वर्ण ५—इन २० प्रकृतियों को ४ मूल पिण्डमें ले लिया। इस तरह सब १४२ प्रकृतियों में से २+१०+१६=२८ प्रकृति कम करनेसे १२० होते हैं।

मिथ्यादृष्टि जीवने सामान्यालापसे ११७ प्रकृतिका उदय तीर्थंकर नामकर्म, आहारक शरीरनामकर्म, आहारकाङ्गोपाङ्ग नामकर्म, सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति व सम्यक्प्रकृति—इन पाँचका उदय नहीं है। उदययोग्य सब प्रकृति १२२ हैं। बंधयोग्य प्रकृतियोंमें सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्प्रकृति और मिलानेसे उदय योग्य १२२ प्रकृतियाँ हो जाती हैं।

मिथ्यादृष्टि जीवमें सत्त्व १४८ प्रकृतिका हो सकता है।

मिथ्यादृष्टि, असद्दृष्टि, व्यवहारदृष्टि, अभूतार्थदृष्टि, अयथार्थदृष्टि, असत्यार्थदृष्टि, पर्यायदृष्टि, परसमय, पर्यायमूढ़, पर्यायबुद्धि, वितथदृष्टि, व्यलीकदृष्टि, मिथ्यादृष्टि, मोही, मुग्ध, मूढ़ आदि सब एकार्थक हैं।

जीवोंको संसारक्लेशका मूल कारण मिथ्यात्व है। इसका विनाश अनंतानुबन्धी कषाय व दर्शनमोहके उपशम व क्षयोपशमको निमित्त पा करके होता है। क्षय तो उसीके होता है जिसके मिथ्यात्वका अनुदय है अर्थात् वेदकसम्यक्त्व है। सम्य-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्त्वघातक प्रकृतिके उपशम व क्षयोपशमका निमित्त आत्म-भावना है, आत्माका कारण भेदविज्ञान है, भेदविज्ञानका कारण तत्त्वाभ्यास है, तत्त्वाभ्यासका निमित्त ज्ञानावरण विशिष्ट क्षयोपशम है। सो विशिष्ट क्षयोपशम तो प्राप्त हो गया, अब तत्त्वाभ्यास करके और उसको अभेद स्वभावमें ले जाकर अपने आपको निस्तरंग बनाकर मिथ्यात्वसे रहित होओ। इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानका वर्णन करके अब सासादन सम्यक्त्व गुणस्थानके विषयमें कहते हैं—

सासादन सम्यक्त्व

जिस उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके सम्यक्त्वकी विराधना (विनाश) हो गई और मिथ्यात्वकर्मके उदयसे होने वाला मिथ्यात्व आ नहीं पाया, इस बीचके परिणामोंको सासादन-सम्यक्त्व कहते हैं।

आसादन नाम सम्यक्त्वकी विराधनाका है, जो आसादन से अर्थात् सम्यक्त्वकी विराधनासे सहित है उसे सासादन सम्यग्दृष्टि कहते हैं। इसके परिणामको सासादनसम्यक्त्व कहते हैं।

'आयं असदायति इति आसादनम्' यहाँ वृषोदरादित्वात् य शब्दका लोप हो गया और 'कृद्वहुलम्' इस नीतिसे अनट् प्रत्यय हुआ तब आसादनम् बना। आसादनका अर्थ है जो औपशमिक सम्यक्त्वकी आय (लाभ) को नष्ट कर दे। इस आसादनके

साथ जो रहें उन्हें सासादन कहते हैं।

इसका दूसरा नाम सासन भी है। असन अर्थात् सम्यक्त्व की विराधना उसके साथ जो रहे उसे सासन कहते हैं।

इसका दूसरा नाम सास्वादन भी हो सकता है। सम्यक्त्वरूप रसके आस्वादनसे जो रहे सो स + आस्वादन = सास्वादन है, परन्तु आस्वादनके करने वाले पुरुषके वमनके स्वादके समान आखिरी बिगड़ा स्वाद है। इसके पश्चात् नियम से मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। यह सम्यक्त्वका वमन करने वाला जीव है।

इस गुणस्थान वाला जीव असद्दृष्टि है, क्योंकि इसके अनन्तानुबंधीजनित विपरीत अभिप्राय है।

जैसे कोई पर्वतके शिखरपरसे गिर पड़े और जब तक भूमि में न पड़े ऐसी बीचकी स्थिति होती है, इसी तरह सम्यक्त्वसे गिर जाय और मिथ्यात्वमें न आ पाये, ऐसे बीचका परिणाम इस गुणस्थानमें है।

इस गुणस्थानमें चारों गतिके जीव होते हैं, परन्तु सासादनमें मरण करके नरकगतिमें उत्पन्न नहीं होता। नरकगतिमें जीव सासादन गुणस्थानको उत्पन्न कर लेते हैं अर्थात् सम्यक्त्व से च्युत होकर नारकी भी सासादनको प्राप्त होते हैं।

सासन गुणस्थानवर्ती जीवके तीर्थंकरप्रकृति व आहारक-द्विक इनमेंसे किसीकी सत्ता नहीं होती अर्थात् इनमेंसे किसीकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भी सत्ता हो तो वह जीव सासादन गुणस्थानमें नहीं जाता। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंकी विशेष जानकारीके लिये विवरण सहित कुछ सासादनसम्यग्दृष्टियोंके प्रकार कहते हैं।

प्रथमोशमच्युत सासादन—जो जीव प्रथमोपशमसे च्युत होकर इस गुणस्थानमें आये हैं।

द्वितीयोपशमच्युतसासादनमृत सासादन—जो जीव द्वितीयोपशमसे च्युत होकर सासादन गुणस्थानमें आ गया, वह मरण करे तो द्वितीयोपशमच्युतसासादनमृतसासादन है। यह जीव देवगतिमें उत्पन्न होता। सासन जीव पर्याप्त हो जाता व अपर्याप्तमें ही मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

प्रथमोपशमच्युत सासादनमृत सासादन—जो जीव प्रथमोपशमसे च्युत होकर सासादन गुणस्थानमें आ गया, वहाँ मरण करे तो वह प्रथमोपशमच्युतसासादनमृत सासादन है। यह जीव मरण करके तिर्यंच, मनुष्य या देव इन गतियोंमें से किसी भी गतिमें जा सकता है।

विग्रहगतिसमाप्तसासादन—कोई जीव सासन गुणस्थानक २-१ समय शेष रहनेपर मरा तो उसका वह गुणस्थान जन्मस्थानपर पहुंचने तक ही पूर्ण हो सकता है। ऐसा जीव विग्रहगतिसमाप्त सासादन है।

निर्वृत्यपर्याप्तिसमाप्तसासादन—जो जीव जन्मस्थानपर पहुंचकर भी सासादन रहते हैं वे शरीरपर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहिले

http://www.jainkosh.org

ही अपना सासादन गुणस्थान पूर्ण कर देते हैं अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती हो जाते हैं।

क्रोधप्रेरित सासादन—उपशमसम्यक्त्वका काल कमसे कम एक समय व अधिकसे अधिक ६ आवली शेष रहनेपर सासादन गुणस्थान हुआ करता है। सो अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया व लोभ—इनमेंसे किसीका उदय होते ही सासादन होता है। उस जीवके यदि अनंतानुबंधी क्रोधके उदयके निमित्त से सासादनसम्यक्त्व हुआ है तो वह क्रोधप्रेरित सासादनसम्यग्दृष्टि है।

मानप्रेरित सासादन—जो जीव अनन्तानुबन्धी मानकषाय के उदयसे सासादन गुणस्थानमें आये हैं वे मानप्रेरित सासादन सम्यग्दृष्टि हैं।

मायाप्रेरित सासादन—जो जीव अनंतानुबंधी मायाकषाय के उदयसे सासादनगुणस्थानमें आये हैं वे मायाप्रेरित सासादन सम्यग्दृष्टि हैं।

लोभप्रेरित सासादन—जो जीव अनन्तानुबंधी लोभकषाय के उदयसे सासादन गुणस्थानमें आये हैं वे लोभप्रेरित सासादन सम्यग्दृष्टि हैं।

इसी प्रकार अन्य अपेक्षाओंसे भी इसके प्रकार जानना चाहिये।

सासादन गुणस्थानमें मरण करके जीव वादर एकेन्द्रिय,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असैनीपञ्चेन्द्रिय व सैनी पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न हो सकते हैं।

सासादन गुणस्थानमें बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, असैनीपंचेन्द्रिय अपर्याप्त, सैनी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त–ये ७ जीव समास होते हैं। जिस मतसे सासादन मरकर सैनी पंचेन्द्रियमें ही उत्पन्न होता है उस अपेक्षासे २ ही जीव समास होते हैं ? १. सैनी पंचेन्द्रियअपर्याप्त, २. सैनी पंचेन्द्रियपर्याप्त।

सासादनमें ४ अपर्याप्तियाँ, ५ अपर्याप्तियाँ, ६ अपर्याप्तियाँ व ६ पर्याप्तियाँ होती हैं अथवा ६ अपर्याप्तियाँ व ६ पर्याप्तियाँ होती हैं।

सासादनमें प्राण ३, ४, ५, ६, ७, ७ व १० प्राण होते हैं अथवा ७ या १० प्राण होते हैं।

सासादनमें संज्ञा चार, गति चार, इन्द्रियजाति ५ अथवा एक सैनी पंचेन्द्रिय, काय ६ या १ त्रसकाय होते हैं।

सासादनमें योग १३ होते हैं, आहारककाययोगद्विक नहीं होते। परन्तु एक जीवके पर्याप्तमें ६ और अपर्याप्तमें २ या १ योग्यतासे होते हैं। एकदा एक ही योग होता है।

सासनमें वेद तीनों होते हैं, किन्तु एक जन्ममें एक ही वेद होता है।

सासनमें कषाय २५ होती हैं। एक जीवकी अपेक्षा ७ या

८ या ९ होते हैं। सासनमें ३ कुज्ञान, एक असंयम, २ दर्शन, ६ लेश्या, भव्यत्व, सासनसम्यक्त्व, संज्ञी असंज्ञी २ अथवा संज्ञी एक ही, आहारक व अनाहारक होते हैं। उपयोग दोनों क्रमशः होते।

सासनमें ध्यान आर्तध्यान ४ व रौद्रध्यान ४ ये ८ होते हैं। एक समय एक जीवके एक ही ध्यान होता है।

सासादनमें आस्रव ५० होते हैं, यहाँ मिथ्यात्व ५ और आहारककाययोग व आहारकमिश्रकाययोग नहीं होता। पर्याप्त में ४७ आस्रव हैं और अपर्याप्तमें ४० आस्रव हैं, परन्तु एक जीवकी अपेक्षासे पर्याप्तमें १० से १७ तक और अपर्याप्तमें भी १० से १७ तक होते हैं।

सासादन गुणस्थानमें भाव ३२ होते हैं और पर्याप्त सासादनमें भी ३२ हैं व अपर्याप्तमें ३४ हैं, किन्तु एक जीवकी अपेक्षासे सासादन पर्याप्तमें २१ से २७ तक हो सकते हैं और अपर्याप्तमें २० से २७ तक हो सकते हैं।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके देहकी अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भागसे लेकर १००० योजन तककी हो सकती है। बड़ी अवगाहनाका जीव महामत्स्य है।

सासनसम्यग्दृष्टियोंकी संख्या अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और कमसे कम कभी एक भी रहती है और कभी ऐसा भी होता है कि एक भी नहीं होता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सासादन जीव लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं।

सासादन सम्यक्त्वका काल एक जीवकी अपेक्षा कमसे कम एक समय व अधिकसे अधिक ६ आवली है। नाना जीव की अपेक्षा एक समयसे लेकर पल्यके असंख्यातवें भाग तक सासन रहते हैं। इसके पश्चात् नियमसे विरह होता है। बीचमें भी कभी एक समय या अधिक समयका विरह हो सकता है।

सासादनसे पहिले गुणस्थानमें ही पहुंचना होता, परन्तु दूसरेमें चौथे, पाँचवें या छठवेंसे पहुंच सकता है। उपशमसम्यक्त्वकी विराधना होनेपर चौथेसे पहुंच सकता है, उपशमसम्यक्त्व व संयमासंयमकी एक साथ विराधना होनेपर पांचवेंसे दूसरेमें जाता है और उपशमसम्यक्त्व व महाव्रतकी एक साथ विराधना होनेपर छठवेंसे दूसरेमें पहुंचता।

सासन गुणस्थानमें एक जीवकी अपेक्षा बंधप्रकृतियोंकी संख्या नाना प्रकारसे है, क्योंकि गति आदिके भेदसे ये नाना प्रकारके हो जाते हैं। नाना जीवकी अपेक्षा बंधप्रकृति इसमें १०१ हैं, क्योंकि इस गुणस्थानमें मिथ्यात्व, हुंडक, नपुंसक, असंप्राप्तसृपाटिका, एकेन्द्रिय, स्थावर, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु—ये १६ तो मिथ्यात्वमें बंधव्युच्छित्ति वाली और तीर्थंकर व आहारकद्विक इस तरह १९ प्रकृतियोंका बंध नहीं होता है।

http://www.jainkosh.org

सासन गुणस्थानमें उदय एक जीवकी अपेक्षा गति आदि के भेदसे भिन्न-भिन्न प्रकारसे है। नाना जीवकी अपेक्षा उदय १११ प्रकृतियोंका है। इसमें मिथ्यात्व, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण—ये ५ मिथ्यात्वमें उदय व्युच्छित्ति वाली तथा तीर्थंकरप्रकृति व आहारकद्विक, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति इन नरकगत्यानुपूर्वी——ये ६ इस प्रकार इन ११ प्रकृतियोंका उदय नहीं है।

सासादनमें सत्त्व नाना जीवकी अपेक्षा १४५ प्रकृतियोंका है, क्योंकि जिसके तीर्थंकरप्रकृति व आहारकद्विककी सत्ता होती है वह दूसरे गुणस्थानमें नहीं पहुंचता। इस गुणस्थानमें तीर्थंकरप्रकृति व आहारकद्विक इन तीनकी सत्ता नहीं होती।

इस गुणस्थानमें दर्शनमोहकी ओरसे पारिणामिकता होने से पारिणामिकभाव है अर्थात् सासादन गुणस्थान दर्शनमोहके न उदयसे होता है, न क्षयसे, न उपशमसे, न क्षयोपशमसे। अतः पारिणामिक भाव है। यह पारिणामिकपना केवल दर्शन मोह अपेक्षासे है। इसे जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्वकी तरह पारिणामिकता नहीं समझना। क्योंकि जीवत्व आदि तो आठो कर्मोंकी ओरसे पारिणामिक है, परन्तु सासादन गुणस्थान केवल दर्शनमोहकी ओरसे पारिणामिक है।

यह गुणस्थान अनंतानुबंधी कषायके उदयसे होता है। इसलिये औदयिक भी कह सकते हैं, किन्तु इस कथनकी प्रधा-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नता नहीं है। क्योंकि आदिके ४ गुणस्थान दर्शनमोहकी अपेक्षा से कहे गये हैं।

इस गुणस्थानमें निमित्त मोह है, क्योंकि मोहकी अपेक्षा पारिणामिकता होनेसे वह गुणस्थान हुआ है।

इस गुणस्थान व इस गुणस्थानवर्ती जीवका नाम सान भी सांकेतिक संक्षिप्त नाम है, स याने सहित, अन याने अनंतानुबंधी अर्थात् जो अनन्तानुबंधी कषायके उदयसे सहित है उसे सान कहते हैं। यद्यपि अनन्तानुबंधी कषायका उदय पहिले गुणस्थानमें भी है तथापि वह मिथ्यात्व करिके भी सहित है। अतः इस शब्दसे मिथ्यात्वके उदयरहित अनन्तानुबंधीके उदय की विशेषता प्रकट की गई है। सासादन गुणस्थानमें मिथ्यात्व का उदय नहीं है और अनन्तानुबन्धी कषायका उदय है, अतः सान शब्दसे द्वितीय गुणस्थान व द्वितीय गुणस्थानवर्ती जीवका ग्रहण हुआ।

सासादनसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यक्त्व, सासादन, सासन, सास्वादन, सान—ये सब एकार्थवाचक हैं।

इस प्रकार सासादन सम्यक्त्वका वर्णन करके अब सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका वर्णन करते हैं—

सम्यग्मिथ्यात्व

सम्यक् याने समीचीन (सच्ची), मिथ्या (झूठी), दृष्टि कहिये, श्रद्धा या रुचि जिसके होती है वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि है,

उसके परिणामको सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं। गुण-गुणीमें अभेद करके सभी गुणस्थान गुणस्थानवर्तियोंके नाम हैं और गुणस्थानवर्ती जीव ही गुणस्थान है।

एक साथ समीचीन असमीचीन श्रद्धा वाला जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि है। जैसे पहिले माने हुए अन्य देवताका परित्याग किये बिना अरहंतमें भी देव हैं, ऐसी श्रद्धा होना। इसी तरह तत्त्व आदिके सम्बंधमें लगा लेना।

जैसे किसी पुरुषकी किसीमें मित्रता है और किसीमें शत्रुता है तो मित्रता व शत्रुता दोनों प्रकारके भाव एक पुरुषमें संभव हैं, इसी प्रकार तत्त्वश्रद्धान और अतत्त्वश्रद्धान एक साथ जीवमें कदाचित् संभव है।

यह गुणस्थान न तो सम्यक्त्वरूप ही है और न मिथ्यात्वरूप ही है, किन्तु दोनोंसे विलक्षण मिश्ररूप है। जैसे दही व गुड़के मिश्रणमें न गुड़का स्वाद रहता है, न दहीका। दोनोंसे विलक्षण मिश्र स्वाद है।

सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे होता है, परंतु यह उदय शिथिलरूप है, क्षयोपशमवत् है अथवा मिश्ररूप है। अतः क्षायोपशमिक भाव है। सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका दूसरा नाम मिश्रसम्यक्त्व भी है, वह प्रकृति मिथ्यात्व के स्पर्द्धककी शिथिलतासे, टूट-फूटसे बनी है. अतः उसका उदय क्षायोपशमिकतावत् है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

इस गुणस्थानमें यद्यपि यह भी स्थिति रहती है कि मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्द्धकोंका उदयाभावी क्षय व आगामी उदययोग्य इन्हीं स्पर्द्धकोंका उदयाभावरूप उपशम तथा सम्यग्मिथ्यात्वका उदय, किन्तु इस कारणसे यह क्षायोपशमिक भाव नहीं है। क्योंकि उपशमसम्यक्त्वसे तीसरे गुणस्थानमें आये हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वका उदयाभावी क्षय नहीं पाया जाता, किन्तु उदयाभाव पाया जाता है तथा इस तरह क्षायोपशमिक माननेपर सादि मिथ्यादृष्टि जीवके भी मिश्रसम्यक्त्व व सम्यक्प्रकृतिका उदयाभावी क्षय व उदयाभावरूप उपशम व मिथ्यात्वका उदय होनेसे मिथ्यात्व गुणस्थानको भी क्षायोपशमिक मानना पड़ेगा।

इस गुणस्थानमें यद्यपि अनन्तानुबंधीके क्षयोपशमकी भी स्थिति रहती है, किन्तु इस कारणसे भी यहाँ क्षायोपशमिकता नहीं, क्योंकि आदिके चार गुणस्थान दर्शनमोहके निमित्तसे माने गये, तभी तो दूसरे गुणस्थानको भी औदयिक नहीं कहा। दूसरी बात यह है कि उपशमसम्यक्त्वसे मिश्रमें आये हुए जीवके अनन्तानुबंधीका उदयाभावी क्षय नहीं पाया जाता, मात्र उदयाभाव पाया जाता है।

इस गुणस्थानमें सम्यक्प्रकृतिका उदयक्षय व उसीका उदयाभाव उपशम और सम्यग्मिथ्यात्वके उदयसे भी क्षायोपशमिकता नहीं मानना, क्योंकि उपशमसम्यक्त्वसे मिश्रमें आये

http://www.jainkosh.org

हुए जीवके सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयाभावी क्षय नहीं पाया जाता, मात्र उदयाभावरूप उपशम रहता है।

उक्त तीनों प्रकारकी क्षायोपशमिकताओंका ज्ञान तो अवश्य कर लेना चाहिये, किन्तु इस गुणस्थानमें इस हेतुसे क्षायोपशमिकता नहीं मानना चाहिये, क्योंकि उन लक्षणोंमें अव्याप्ति दोष है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंकी विशेषताओंके लिए उनके प्रकारों का कुछ वर्णन करते हैं—

वेदकयोग्यमिथ्यात्वगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि——जो जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करके उसके पश्चात् अथवा यथासमय तक यथायोग्य अवस्थाके पश्चात् मिथ्यादृष्टि हुआ है उसमें सम्यक्त्वविरोधिनी सातों प्रकृतियोंका सत्त्व है, उसके वेदकयोग्य कालके भीतर यदि सम्यग्मिथ्यात्वका उदय आ जावे तो वह वेदकयोग्यमिथ्यात्वागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि है। इसके मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति व अनन्तानुबंधीका उदयाभावी क्षय और उदयाभाव उपशम तथा सम्यग्मिथ्यात्व व अन्य कषायोंका उदय है।

द्वितीयोपशमागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि——द्वितीयोपशमक सम्यक्त्वका काल समाप्त होनेपर यदि सम्यग्मिथ्यात्वका उदय आ जाय तो वह द्वितीयोपशमागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि है। इसके मिथ्यात्व व सम्यक्त्व प्रकृतिका उदयाभावरूप उपशम रहता

Version 1

है। http://sahjanandvarnishastra.org/ द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि श्रेणीमें तो क्रमशः उतरकर छठे तक आता है इसके पश्चात् क्रमशः या एकदम सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो सकता है।

प्रथमोपशमागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि—जो प्रथमोपशमसम्यक्त्वसे च्युत होकर तीसरे गुणस्थानमें आये हैं वे प्रथमोपशमागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं। इस प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिने यदि अनंतानुबंधीका प्रथमोपशम किया था तो वहाँ मिथ्यात्व व सम्यप्रकृतिका उदयाभाव है तथा अनन्तानुबंधीके अतिरिक्त अन्य कषाय व सम्यग्मिथ्यात्वका उदय रहता है।

वेदकसम्यक्त्वागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि—जो वेदकसम्यक्त्व से च्युत होकर सम्यग्मिथ्यात्वमें आया वह वेदकसम्यक्त्वागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि है। इस जीवके मिथ्यात्व व सम्यक्प्रकृति तथा अनन्तानुबंधीका उदयाभावी क्षय एवं उदयाभावरूप उपशम है व सम्यग्मिथ्यात्व व अन्य कषायका उदय रहता है।

२८ की सत्ता वाला सम्यग्मिथ्यादृष्टि—२८ प्रकृतिकी सत्ता वाले मिथ्यात्वसे तीसरे गुणस्थानमें आये हुये अथवा वेदकसम्यक्त्वसे च्युत होकर मिश्र गुणस्थानमें आये हुए जीव २८ की सत्ता वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं।

२४ की सत्ता वाला सम्यग्मिथ्यादृष्टि—अनन्तानुबंधीकी विसंयोजना करने वाले द्वितीयोपशमसम्यक्त्व स्थानसे च्युत होकर जो सम्यग्मिथ्यादृष्टि हुये हैं वे २४ की सत्ता वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं।

उपर्यागतिगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि—जो ऊपरके गुणस्थान से च्युत होकर सम्यग्मिथ्यादृष्टि हुआ और पश्चात् अविरत सम्यक्त्वमें पहुंचे तो वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि उपर्यागतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि है। इसका इस गुणस्थानमें सर्वजघन्यकाल नहीं होता, क्योंकि सम्यग्दृष्टि संक्लेशपरिणामसे सम्यग्मिथ्यात्वमें आया, उसे फिर ऊपर ही जानेको विशुद्ध परिणाम चाहिये सो इसमें विलम्ब हो जाता है।

उपर्यागत्यधोगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि—जो चौथे आदि ऊपरके गुणस्थानसे च्युत होकर सम्यग्मिथ्यात्वमें आया व पश्चात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें जावे तो वह उपर्यागत्यधोगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि है। इसका काल सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त हो सकता है, क्योंकि संक्लेश परिणामसे गिरकर तीसरेमें आये हुये व संक्लेशसे ही मिथ्यात्वमें पहुंचे हुए जीवका इस गुणस्थानसे निकलनेमें विलम्ब नहीं लगता।

अधःसमायातोपरिगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि—मिथ्यात्व गुणस्थानसे विशुद्ध परिणाम द्वारा तीसरे गुणस्थानमें पहुंचे हुये और पश्चात् शीघ्र विशुद्ध परिणामसे अविरत सम्यक्त्वमें पहुंचने वाले जीवको तीसरे गुणस्थानमें अधःसमायातोपरिगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहते हैं। इसका भी काल पूर्ववत् जघन्य है।

अधःसमायाताधोगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि—मिथ्यात्व गुण-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

स्थानसे तीसरे गुणस्थानमें पहुंचने वाले व पश्चात् मिथ्यात्वमे ही पहुंचने वाले जीवको तीसरे गुणस्थानमें अधःसमायाताधोगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहते हैं। इसका भी जघन्यकाल पूर्ववत् अल्प नहीं है, क्योंकि इसे विशुद्धसे संक्लिष्ट परिणाम करना होता है।

सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें मरण नहीं होता और न इस गुणस्थानमें आयुका बंध ही होता। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके यदि शीघ्र मरणकाल आ जावे तो वह यदि मिथ्यात्व अवस्था में आयु बांध चुका था तो मिथ्यात्वमें जावेगा और यदि सम्यक्त्वमें आयु बांध चुका था तो अविरत सम्यक्त्वमें जावेगा और वहीं मरण करेगा अर्थात् नवीन आयुका उदय पावेगा।

इस गुणस्थानमें तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्ता वाला जीव नहीं होता है अर्थात् तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्ता वाला जीव तीसरे गुणस्थानमें नहीं पहुंचता। तीर्थंकरकी सत्ता वाला सम्यक्त्वसे रहित कभी नहीं होता। केवल इस विवशतामें ही जबकि सम्यक्त्वसे पहिले नरकायुका बंध कर लिया हो, पुनः क्षायिकसम्यक्त्वको छोड़कर अन्य सम्यक्त्व प्राप्त कर लेवे और तीर्थंकर प्रकृतिका भी बंध कर लेवे तो वह मरण समयमें सम्यक्त्व से च्युत हो जाता है, सो केवल २ अन्तर्मुहूर्तको वियोग होता है। ऐसा जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें व सासादनमें तो किसी भी प्रकार नहीं जाता।

 http://www.jainkosh.org

इस गुणस्थानमें सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, ६ पर्याप्तियां, १० प्राण, ४ संज्ञा, ४ गति, इन्द्रियजाति पञ्चेन्द्रिय, त्रसकाय, योग १०, वेद ३, कषाय २१ होती हैं।

सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें ज्ञान ३ मिश्र होते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टिके परिणाम सम्यक् व मिथ्या मिश्ररूप हैं, अतएव उसके ज्ञानको भी मिश्रज्ञान समझना चाहिये।

इस गुणस्थानमें असंयम, दर्शन २, लेश्या ६, भव्यत्व, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्ञी, आहारक होते हैं। उपयोग दोनों क्रमशः होते हैं।

मिश्रगुणस्थानमें ध्यान ८ होते है। किन्हीं आचार्योंके मत से ९ माने गये हैं। आर्तध्यान ४, रौद्रध्यान ४ व आज्ञाविचय धर्म्य ध्यान।

मिश्रमें आस्रव—अविरति १२, कषाय २१, योग १० इस प्रकार सब ४३ होते हैं।

मिश्रमें भाव कमसे कम २१ और अधिकसे अधिक २८ होते हैं। नाना जीवोंकी अपेक्षासे ३२ भाव होते हैं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके देहकी अवगाहना घनांगुलके संख्यातवें भागसे लेकर १००० योजन तककी होती है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका निवास लोकके असंख्यातवें भागमें है।

इस गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त ही है, किन्तु नाना जीवकी अपेक्षासे वे अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भाग

Version 1

काल तक निरन्तर बने रह सकते हैं।

इस लोकमें कोई भी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव न हो, ऐसा समय आ सकता है तो कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भाग काल तक।

मिश्र गुणस्थानमें समस्त बन्ध योग्य १२० प्रकृतियोंमें से ७४ का ही बंध होता है। मिथ्यात्वमें व्युच्छिन्न १६ प्रकृति और सासादनमें व्युच्छिन्न अनन्तानुबंधी ४, निद्रानिद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, बीचके ४ संस्थान व ४ संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, उद्योत, तिर्यगायु, ये २५ प्रकृति तथा तीर्थंकरप्रकृति, आहारकद्विक व मनुष्यायु और देवायु, ये ५ इस तरह १६+२५+५, इन ४६ प्रकृतियोंका बंध नहीं होता। यह बन्धविच्छेद नाना जीवकी अपेक्षासे है।

इस गुणस्थानमें १०० प्रकृतियोंका उदय नाना जीवकी अपेक्षासे है। मिथ्यात्वमें उदयव्युच्छिन्न ५ प्रकृति, सासादनमें व्युच्छिन्न अनंतानुबंधी ४, एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ये ९, सम्यक्प्रकृति, तीर्थंकरप्रकृति, आहारकद्विक, चारों आनुपूर्वी, इस प्रकार २२ प्रकृतियोंका उदय इस गुणस्थान में नहीं है।

मिश्र गुणस्थानमें सत्त्व नाना जीवोंकी अपेक्षासे १४७ प्रकृतियोंका है। इसमें तीर्थंकरप्रकृतिका सत्त्व नहीं। एक जीव

की अपेक्षा नाना प्रकारके जीव होनेसे सत्त्वके बंधके व उदयके भी कुछ नाना प्रकार हैं।

सम्यग्मिथ्यात्व, मिश्रसम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, उभयदृष्टि, मिश्रदृष्टि—ये सब एकार्थवाचक नाम हैं।

इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका वर्णन करके अब अविरत सम्यक्त्व गुणस्थानका वर्णन करते हैं।

अविरत सम्यक्त्व

जहाँ सम्यग्दर्शन तो प्रकट हो गया है, परन्तु एकदेश या सर्वदेश किसी भी प्रकारका व्रत (संयम) न हुआ हो उसे अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान कहते हैं और अविरत सम्यक्त्व गुणस्थानवर्ती जीवको अविरत सम्यग्दृष्टि कहते हैं। इस गुणस्थान के विशेष परिज्ञानके लिये प्रथम कुछ अविरत सम्यग्दृष्टियोंके प्रकार कहते हैं।

आद्य प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि—अनादि मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व व अनंतानुबंधी ४—इन ५ प्रकृतियोंके उपशमसे उपशमसम्यक्त्व उत्पन्न करता है तब वह आद्य प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वागतवेदक सम्यग्दृष्टि—प्रथमोपशमसम्यक्त्वके परिणामसे प्रथमोपशमसम्यक्त्वके प्रथम समयमें ही मिथ्यात्वके तीन भाग होते हैं—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्प्रकृति। सो प्रथमोपशम सम्यक्त्वके पश्चात् यदि सम्यक्

Report any errors at vikasnd@gmail.com

प्रकृतिका उदय आ जावे और शेष ६ प्रकृतियोंका उदयाभावी क्षय व सद्वस्थारूप उपशम रहे, इस स्थितिके निमित्तसे उत्पन्न हुए सम्यक्त्व वाले जीवको प्रथमोपशमसम्यक्त्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

मिथ्यात्वागत वेदकसम्यग्दृष्टि—२८ की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टिके सम्यक्प्रकृतिका उदय व शेषका उदयाभावी क्षय व उपशम रहे, इस स्थितिके निमित्तसे उत्पन्न हुए सम्यक्त्व वाले जीवको मिथ्यात्वागत वेदकसम्यग्दृष्टि कहते हैं।

सम्यग्मिथ्यात्वागत वेदकसम्यग्दृष्टि—सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके पश्चात् उक्त स्थितिके निमित्तसे उत्पन्न हुए सम्यक्त्व वाले जीवको सम्यग्मिथ्यात्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

द्वितीयोपशमागत वेदकसम्यग्दृष्टि—उपशमश्रेणीसे उतरे हुए द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिके चौथेसे सातवें गुणस्थान तकमें यदि सम्यक्प्रकृतिका उदय आ जावे तो उसे द्वितीयोपशमागत वेदकसम्यग्दृष्टि कहते हैं।

कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि—वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सप्तप्रकृतियों का क्षय प्रारम्भ करता है तो अनन्तानुबंधीका विसंयोजना क्षय करके व मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय करके सम्यक्प्रकृतिके अन्तिम स्थितिकांडकका घात कर चुकता है तबसे वह क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होनेके पहिले तक कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि कहलाता है।

http://www.jainkosh.org

२८ सत्प्रकृतिकमिथ्यात्वागत प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि—२८ मोह प्रकृतिकी सत्ता वाले सादि मिथ्यादृष्टिके प्रथमोपशमसम्यक्त्व उत्पन्न हो तो वह २८ सत्प्रकृतिक मिथ्यात्वागत प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि है।

उद्वेलितसम्यक्त्वमिथ्यात्वागत प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि—२८ प्रकृतिकी सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि जब सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना कर चुके तब २७ की सत्ता रहती है, उस समय जिसके प्रथमोपशमसम्यक्त्व उत्पन्न हो उसे उद्वेलितसम्यक्त्वमिथ्यात्वागत प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि कहते हैं।

उद्वेलितद्वयमिथ्यात्वागत प्रथमोपशम सम्यग्मिथ्यादृष्टि—जो सम्यक्प्रकृति व सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर चुका है उसके २६ की सत्ता हो गई, उसके ५ प्रकृतिके उपशमसे उपशमसम्यक्त्व उत्पन्न हो तो उसे उद्वेलितद्वयमिथ्यात्वागत प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

सम्यग्मिथ्यात्वागत वेदकसम्यग्दृष्टि—सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें आये हुए वेदकसम्यग्दृष्टिको सम्यग्मिथ्यात्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

२३ की सत्ता वाला वेदकसम्यग्दृष्टि—अनन्तानुबंधीके क्षयके बाद जब मिथ्यात्वप्रकृतिका क्षय कर देता है तब वह २३ की सत्ता वाला वेदकसम्यग्दृष्टि है।

२२ की सत्ता वाला सम्यग्दृष्टि—उक्त जीव जब सम्य-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ग्मिथ्यात्वका भी क्षय कर देता है तब यह २२ की सत्ता वाला वेदकसम्यग्दृष्टि है।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि—उक्त जीव जब सम्यक्प्रकृतिका भी पूर्ण क्षय कर देता है तब वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि है। उसके २१ मोहप्रकृतिकी सत्ता है इस गुणस्थानमें।

द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि—वेदकसम्यग्दृष्टि जीव जब सातों प्रकृतियोंका उपशम कर देता है तब उसे द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि कहते हैं। इसके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजता ही होती है, अतः यह २४ प्रकृतिकी सत्ता वाला है।

अपर्याप्त द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि—द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के कालमें ही मरण हो जावे तो वह केवल देवगतिमें ही उत्पन्न होता है और वह द्वितीयोपशम शरीरपर्याप्ति होनेसे पहिले नष्ट हो जाता है, ऐसे जीवको अपर्याप्त द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि कहते हैं।

अपर्याप्त वेदकसम्यग्दृष्टि—वेदकसम्यक्त्वमें मरण हो जावे तो वेदकसम्यक्त्व अपर्याप्त अवस्थामें ही रहता है। यह जीव कर्मभूमिया व भोगभूमिया मनुष्य, भोगभूमिया तिर्यञ्च व वैमानिक देवमें ही मिलेगा। प्रथम नरकके नारकी भी अपर्याप्त अवस्थामें वेदकसम्यग्दृष्टि रह सकते हैं। वह वेदकसम्यक्त्व अपर्याप्त अवस्थाके बाद भी बना रह सकता है।

अपर्याप्त क्षायिक सम्यग्दृष्टि—क्षायिक सम्यग्दृष्टिका मरण

हो तो वह वैमानिक देवोंमें जन्म लेता है, किन्तु यदि सम्यक्त्व से पहिले नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु बांध ली हो तो क्रमशः पहिले नरक, भोगभूमिया तिर्यंच, भोगभूमिया मनुष्यमें उत्पन्न होंगे। यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि नारकी व देव है तो वह मनुष्यगतिमें ही उत्पन्न होगा। ये जीव अपर्याप्तके पश्चात् भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि होते हैं। यह सम्यक्त्व कभी भी नहीं छूटता।

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापक वेदकसम्यग्दृष्टि—अधःकरणके प्रथम समयसे लेकर जब तक यह वेदक सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्वका सम्यक्प्रकृतिमें संक्रमण करता है तब तक वह दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापक वेदकसम्यग्दृष्टि है।

दर्शनमोहोपशामनाप्रस्थापक वेदकसम्यग्दृष्टि—अधःकरण के प्रथम समयसे लेकर समस्त दर्शनमोहका अन्तरकरण कर चुकने तक यह जीव दर्शनमोहोपशामनाप्रतिष्ठापक वेदकसम्यग्दृष्टि जीव है, इसका द्वितीयोपशम उत्पन्न करनेसे पहिले मरण नहीं होता। द्वितीयोपशमके कालमें मरण भी हो सकता।

अनन्तानुबंधीविसंयोजक वेदकसम्यग्दृष्टि—दर्शनमोहकी क्षपणा करता हुआ जीव पहिले करणत्रय द्वारा अनंतानुबंधीका विसंयोजन करे, फिर वेदकसम्यक्त्व प्राप्त करे उसे अनंतानुबंधी विसंयोजक वेदकसम्यग्दृष्टि जीव कहते हैं।

इसी प्रकार अन्य अविरतसम्यग्दृष्टियोंकी चिन्तना कर लेनी चाहिए। अब प्रथमोपशम, द्वितीयोपशम, वेदक व क्षायिक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सम्यक्त्व होनेके अन्तर्मुहूर्त पहिलेकी अवस्थाका वर्णन क्रमशः करते हैं—

प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी घटना—जब जीवका अधिकसे अधिक अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल संसारका शेष रहता है तब वह सम्यक्त्व प्राप्त करनेके योग्य है। सो इस कालके भीतर कभी भी जब प्रायोग्यलब्धिके द्वारा सब कर्मोंकी अधिकसे अधिक स्थिति अन्तःकोटाकोटि सागरकी ही रह जाती है तब यह भव्य जीव अधःकरण परिणामको करता है। अधःकरण परिणामका विवरण सातवें गुणस्थानके प्रकरणमें करेंगे। यहाँ प्रकरणवश प्रायोग्यलब्धिमें होने वाले ३४ बंधापसरणोंको कहते हैं।

प्रायोग्यलब्धिमें विशुद्धिके बढ़नेपर जीव अन्तःकोटाकोटि सागरकी स्थितिको बाँधता है। इसके पश्चात् प्रत्येक अन्तर्मुहूर्तोंमें पल्यके संख्यातवें भाग कम कर-करके बांधता है, सो जब पृथक्त्वशत (३०० व ९०० के बीच) सागर कम कर देता है तब नरकायुका बंधविच्छेद हो जाता है। इसी तरह प्रत्येक पृथक्त्वशत सागर कम होनेपर निम्नलिखित बंधापसरण होते हैं—२ तिर्यगायु, ३ मनुष्यायु, ४ देवायु, ५ नरकगति नरकगत्यानुपूर्वी, ६ सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण (संयुक्त), ७ सूक्ष्म अपर्याप्त प्रत्येक (सं०), ८ वादर अपर्याप्त साधारण (सं०), ९ वादर अपर्याप्त प्रत्येक (सं०), १० द्वीन्द्रियजातिअपर्याप्त (सं०),

http://www.jainkosh.org

११ त्रीन्द्रिय जाति अपर्याप्त (सं०), १२ चतुरिन्द्रिय जाति अपर्याप्त (सं०), १३ असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय जाति अपर्याप्त (सं०), १४ संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त (सं०) १५ सूक्ष्म पर्याप्त साधारण (सं०), १६ सूक्ष्म पर्याप्त प्रत्येक (सं०), १७ वादर पर्याप्त साधारण (सं०), १८ वादर पर्याप्त प्रत्येक एकेन्द्रिय आताप स्थावर (सं०), १९ द्वीन्द्रियजाति पर्याप्त (सं०), २० त्रीन्द्रिय-जाति पर्याप्त (सं०), २१ चतुरिन्द्रिय जाति पर्याप्त (सं०), २२ असंज्ञी पंचेन्द्रियजाति पर्याप्त (सं०), २३ तिर्यंग्गति, तिर्यंग्गत्यानुपूर्वी, उद्योत, २४ नीच गोत्र, २५ अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, २६ हुंडक संस्थान, असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, २७ नपुंसकवेद, २८ वामनसंस्थान, कीलितसंहनन, २९ कुब्जकसंस्थान अर्द्धनाराचसंहनन, ३० स्त्रीवेद, ३१ स्वाति-संस्थान, नाराच संहनन, ३२ न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, वज्र-नाराचसंहनन, ३३ मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, वज्रवृषभनाराचसंहनन ३४ असाता वेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति—इस प्रकार प्रायोग्यलब्धिमें ३४ बारमें उक्त ३४ प्रकारसे बंध का विनाश होता है। इनमें कितनी ऐसी प्रकृतियां भी हैं जिनका सम्यक्त्व होनेके बाद भी बन्ध होने लगता। परन्तु यहाँ इतने समयको बन्ध रुक जाता है। अभव्य भी प्रायोग्य-लब्धि पाकर इतना कार्य कर सकता है, वह आगे नहीं चलता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस प्रकार बंधापसरणोंको करके संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त विशुद्ध भव्य मिथ्यादृष्टि अध:प्रवृत्तकरणको कर सकता है, पश्चात् अपूर्वकरण पुन: अनिवृत्तिकरण परिणामको करता है। अपूर्वकरणका वर्णन ८वें गुणस्थानमें व अनिवृत्तिकरणका वर्णन नवें गुणस्थानके प्रकरणमें होगा।

अपूर्वकरणसे लेकर अनिवृत्तिकरणके संख्यात भाग काल तक जीव कर्मोंका स्थितिघात अनुभागघात भी करता है, पश्चात् इसके अतिरिक्त अन्तरकरण भी करता है अर्थात् अन्तर्मुहूर्तके अनंतरकी स्थितिमें जो दर्शनमोहकर्म है उसको कुछको अन्तिम आवली छोड़कर पहिली स्थितिमें और कुछको अन्तरकालके बादकी द्वितीय स्थितिमें ला देता है। इस कारण अब जिस समय उपशमसम्यक्त्व होगा उस समयकी स्थितिका दर्शनमोह ही सत्तामें नहीं रहेगा। प्रथम स्थितिमें कर्म लानेको आगाल कहते हैं और द्वितीय स्थितिमें कर्म लानेको प्रत्यागाल कहते हैं।

अन्तरकरण कर चुकनेके पश्चात् उदयावली समाप्त होते ही प्रथमोपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करता है और उस ही प्रथम समयमें उपशमको प्राप्त मिथ्यात्वके तीन भाग करता—कुछ मिथ्यात्व ही रह जाता, कुछ सम्यग्मिथ्यात्वरूप परिणम जाता है, कुछ सम्यक्प्रकृतिरूप परिणम जाता है। अब यह प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि कहलाता है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है।

द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि—वेदक सम्यग्दृष्टि जीव उक्त

प्रकारसे अध:करण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण परिणामोंको करता है, किन्तु दो बार तीनों करणोंको करता है। पहिले तीन करण द्वारा अनन्तानुबंधीकी विसंयोजना (अप्रत्याख्यानावरण रूप कर देना) करता है और दूसरे करणत्रयोंसे उक्त प्रकारसे अन्तरकरण व उपशम करता है। यह जीव सातों प्रकृतियोंका उपशम करता है।

वेदकसम्यग्दृष्टि—प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि या द्वितीयोपशम-सम्यग्दृष्टि जीवके सम्यक्प्रकृति उदयमें आनेपर वेदकसम्यग्दृष्टि हो जाता है। २८ प्रकृतिकी सत्ता वाले वेदकयोग्यमिथ्यात्वके अनन्तर भी वेदकसम्यग्दृष्टि होता है और उसे वेदकसम्यक्त्व उत्पन्न करनेके लिये अध:करण व अपूर्वकरण—ये दो करण करना आवश्यक है।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि—वेदकसम्यग्दृष्टि जीव जब दर्शनमोहकी क्षपणाको उद्यत होता है तब वह पहिले करणत्रयके द्वारा अनंतानुबंधीकी विसंयोजना करके क्षय कर देता है, पुन: करण-त्रयके द्वारा मिथ्यात्वको सम्यग्मिथ्यात्वरूप करके और सम्य-ग्मिथ्यात्वको सम्यक्प्रकृतिरूप करके पश्चात् तीनोंका क्षय कर देता है तब यह जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि होता है। क्षायिकसम्य-क्त्वका काल अनन्त है, यह कभी नष्ट नहीं होगा। इस सम्य-क्त्वमें रहते हुए संसारका काल कुछ अधिक ३३ सागर है। यह आत्मा जिस भवमें क्षायिकसम्यक्त्व किया उसी भवसे या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तीसरे भवमें मोक्ष जाता है। यदि क्षायिक सम्यक्त्वसे पहले मनुष्यायु बांध ली हो या तिर्यंगायु बांध ली हो तो भोगभूमिमें उत्पन्न होकर फिर देवमें जन्म लेकर पश्चात् कर्मभूमिज मनुष्य होकर मोक्ष जावेगा। इस प्रकार चौथे भवसे जा सकता है, इससे अधिक भव किसी भी परिस्थितिमें नहीं हो सकते। सम्यक्त्वसे पहले नरकायु बांध ली हो तो नरकमें उत्पन्न होकर वहांसे मनुष्य होकर मोक्ष चला जावेगा। यहां भी तीसरे भवसे मोक्ष जावेगा।

क्षायिक सम्यक्त्वको वेदकसम्यग्दृष्टि जीव ही केवली या श्रुतकेवलीके पादमूलमें उत्पन्न करता है। यदि वह स्वयं श्रुतकेवली हो तो बिना पादमूलके भी कर लेता है।

इस गुणस्थानमें सैनीपंचेन्द्रिय पर्याप्त, सैनी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त होते हैं। पर्याप्तियां ६ व ६ अपर्याप्तियां, प्राण १० व ७, संज्ञा ४ में कोई एक, जाति पञ्चेन्द्रिय व काय त्रसकाय होते हैं।

इस गुणस्थानमें योग १३ होते हैं, परन्तु एक जीवमें ४ मनोयोग, ४ वचनयोग ये ८ तथा औदारिककाययोग या वैक्रियककाययोग इस तरह ९ हो सकते हैं। अपर्याप्तमें औदारिकमिश्रकाययोग या वैक्रियकमिश्रकाययोग १ व कार्मणकाययोग यों २ होते हैं। एक समयमें एक योग होता है।

इस गुणस्थानमें वेद तीनोंमें से १, कषाय २१, एक जीव

http://www.jainkosh.org

में योग्यतया १९ एकदा ८-७-६ होते हैं। ज्ञान ३ या ३ उपयोगसे एकदा एक, असंयम दर्शनमें ३ या २ एकदा उपयोगमें एक। लेश्या ६ एकदा एक। भव्यत्व। सम्यक्त्वमें ३ एकदा एक संज्ञी। आहारक या अनाहारक होते हैं।

इस गुणस्थानमें उपयोग दोनों क्रमशः होते हैं, ध्यान ११ होते हैं, किन्तु एकदा एक होता है। आस्रव ४६ होते हैं। एक जीवमें कमसे कम ९ व अधिकसे अधिक १६ होते हैं।

इस गुणस्थानमें भाव ३६ होते हैं, एक जीवमें कमसे कम २२ व अधिकसे अधिक २४ या २६ होते हैं।

अविरत सम्यग्दृष्टि जीवके देहकी अवगाहना संख्यात घनांगुलसे १००० योजन तककी है।

ये जीव सब पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

इनका अवास क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग है, किन्तु उपपाद आदि प्रकारोंसे ८ बटे १४ व ८ बटा १२ राजू क्षेत्र इनके द्वारा स्पर्श किया हुआ है।

असंयतसम्यग्दृष्टिसे शून्य कोई भी समय न हुआ, न होगा। ये सर्वकाल पाये जाते हैं, किन्तु एक जीवकी अपेक्षा अविरत सम्यग्दृष्टि जीव कमसे कम अंतर्मुहूर्त तक रहता है और अधिक से अधिक सातिरेक ३३ सागर रहता है।

एक जीव असंयत सम्यग्दृष्टि अपने गुणस्थानको छोड़ दे और पश्चात् इसी गुणस्थानमें आवे तो वह बीचका अन्तर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कमसे कम अन्तर्मुहूर्त होगा व अधिकसे अधिक कुछ कम (अंतर्मुहूर्त कम) अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल तक हो सकता है।

इस गुणस्थानमें गति आदिके अनुसार विविध प्रकारका कर्मोंका बंध, उदय व सत्त्व होता है, किन्तु यहाँ विस्तारभयसे मात्र सामान्यालापसे बंधादिका वर्णन करते हैं।

इस गुणस्थानमें बंध ७७ प्रकृतियोंका हो सकता है, १२० बंधयोग्यमें प्रथमगुणस्थानीय बंधव्युच्छिन्न १६, द्वितीयबंधव्युच्छिन्न २५, इस तरह ४१ तथा आहारकशरीर, आहारकाङ्गोपाङ्ग—इन ४३ का बंध नहीं होता।

इस गुणस्थानमें उदय १०४ प्रकृतियोंका हो सकता है, १२२ बंधयोग्यमें प्रथम उदयव्युच्छिन्न ५, द्वितीय उदयव्युच्छिन्न ६, तृतीय उदयव्युच्छिन्न १, तीर्थंकर, आहारकशरीर व आहारकाङ्गोपाङ्ग इन १८ प्रकृतियोंका उदय नहीं होता।

इस गुणस्थानमें सत्त्व सामान्यालापसे १४८ है, परन्तु द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिके १४४ व क्षायिक सम्यग्दृष्टिके १४१ प्रवृत्तियोंका है। गति आदिकी अपेक्षा तथा एक जीवकी अपेक्षा सत्त्व अनेक प्रकारसे है।

इस गुणस्थानमें दर्शनमोहके उपशमका या क्षयोपशमका या क्षयका निमित्त है, इसलिये इसमें औपशमिक भाव, क्षायोपशमिक भाव व क्षायिक भाव होता है व निमित्त मोहका कहलाता है।

औपशमिक भावमें सम्यक्त्वघातक ५ या ७ प्रकृतियोंका उपशमक भावमें ७ प्रकृतिका क्षय है। क्षायोपशमिक भावमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४—इन छः का उदयाभावी क्षय व सदवस्थारूप उपशम व सम्यक्प्रकृतिका उदय है।

सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसे सम्यक्त्वका घात नहीं होता, किन्तु चल मलिन अगाढ़ दोष उत्पन्न होते हैं।

वेदकसम्यक्त्वके बाद जब द्वितीयोपशम सम्यक्त्व या क्षायिक सम्यक्त्वका कार्य शुरू हो जाता है तब क्षयोपशममें कुछ विशेषता होती है, जैसे कभी ४ का क्षय, २ का उपशम, १ का उदय। कभी ५ का क्षय, १ का उपशम, १ का उदय आदि।

द्वितीयोपशमका प्रारंभ करने वाला अन्तरात्मा द्वितीयोपशम उत्पन्न करनेसे पहिले नहीं बनता।

क्षायिक सम्यक्त्वका प्रारंभ करने वाला अंतरात्मा सम्यक्प्रकृतिका भी जब क्षय शुरू कर देता है उस समयसे . उसका मरण संभव है, सो उस मरणकालके चार भागोंमें मरण करे तो ४-३-२-१ गतियोंमें से किसीमें उत्पन्न होकर वहाँ सम्यक्प्रकृतिका क्षय पूर्ण कर लेगा।

जीवका सर्वप्रथम उद्धारका प्रारंभ इसी गुणस्थानसे होता है अनादि मिथ्यादृष्टि जीवका मिथ्यात्वके पश्चात् उसका सुधार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हो तो यह गुणस्थान प्रथमोपशम सम्यक्त्वके साथ प्राप्त होता है उसे। यद्यपि ऐसा भी हो सकता है कि सम्यक्त्व व देश-संयम तथा सम्यक्त्व व सकलसंयम एक साथ हो जावे तथापि सम्यक्त्व तो प्रथमोपशम होता ही है।

सम्यक्त्व बहुत अमूल्य निज वैभव है इसकी धारणा ही जीवके कल्याणका मंगलाचरण है। अनेक प्रयत्नसे इसकी प्राप्तिका पुरुषार्थ करो। इसकी प्राप्तिका पुरुषार्थ सर्वप्रथम तत्त्वाभ्यास है। इसके प्रसादसे स्व-परका भेदविज्ञान होगा, इसके पश्चात् परसे निवृत्ति व स्वमें रुचि होगी, पुनः समस्त अध्रुव भावोंको छोड़कर ध्रुव निज अभेद चैतन्यस्वभावमें रति होगी, इस प्रयोगसे उत्पन्न आत्माकी सहज अनाकुलताका अनुभवन होगा। इससे ही परमशांति प्राप्त होगी।

इस प्रकार अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान वर्णन करके अब देशसंयत गुणस्थानका वर्णन करते हैं।

देशसंयत गुणस्थान

जहाँ सम्यक्त्व तो प्रकट हो गया हो और देशसंयम भी उत्पन्न हो जावे उस स्थानको देशसंयत गुणस्थान कहते हैं। इसका दूसरा नाम संयतासंयत भी है। जहाँ अल्प संयम व शेष असंयम हो उसे संयमासंयम कहते हैं।

इस गुणस्थानमें त्रस अविरतिकी तो विरति है और शेष ११ अविरतिकी विरति नहीं है।

http://www.jainkosh.org

यह गुणस्थान अप्रत्याख्यानावरण नामक चारित्र मोहनीय के क्षयोपशमसे होता है अर्थात् अप्रत्याख्यानावरणके उदयाभावी क्षय व सदवस्थारूप उपशम तथा प्रत्याख्यानावरणके उदयके निमित्तसे होता है। इसमें चारित्रमोह नामक मोहकर्म का निमित्त है और भाव क्षायोपशमिक भाव है।

यह गुणस्थान ११ प्रकारमें होता है—१ दर्शनप्रतिमा, २ व्रतप्रतिमा, ३ सामायिकप्रतिमा, ४ प्रोषधप्रतिमा, ५ सचित्तविरति प्रतिमा, ६ रात्रिभुक्तित्यागप्रतिमा, ७ ब्रह्मचर्यप्रतिमा, ८ आरंभत्याग प्रतिमा, ९ परिग्रहविरतिप्रतिमा, १० अनुमतिविरति प्रतिमा, ११ उद्दिष्टत्यागप्रतिमा।

निरतिचार सम्यग्दर्शन धारण करने व अन्याय एवं अभक्ष्यके त्यागको दर्शनप्रतिमा कहते हैं।

निरतिचार अणुव्रत ५, गुणव्रत ३, शिक्षाव्रत ४—इस प्रकार बारह व्रतोंके पालन करनेको व्रतप्रतिमा कहते हैं।

प्रातः, मध्याह्न व सायं दो घड़ीसे छः घड़ी तक निरतिचार सामायिक करनेको सामायिक प्रतिमा कहते हैं।

अष्टमी चतुर्दशीको यथाशक्ति (उत्तम मध्यम जघन्य) निरतिचार प्रोषध पूर्वक उपवास करनेको प्रोषध प्रतिमा कहते हैं।

हरी वनस्पति, कच्चा फल आदि सचित्त वस्तुके खानेके त्याग करनेको सचित्तत्याग प्रतिमा कहते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कृतकारित अनुमोदनासे रात्रिभोजनके त्याग व दिनमें मैथुनवार्ताके त्यागको रात्रिभुक्ति या दिवामैथुन त्याग कहते हैं।

पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करनेको ब्रह्मचर्यप्रतिमा कहते हैं।

व्यापारादि आरंभके त्यागको आरंभत्याग प्रतिमा कहते हैं।

वस्त्र अल्प पात्रके अतिरिक्त सब परिग्रहके त्यागको परिग्रहविरति कहते हैं।

गृहकार्यकी अनुमोदनाके त्यागको अनुमतित्याग प्रतिमा कहते हैं।

मात्र पात्रके निमित्तसे बताये गये आहारके ग्रहण न करने के नियमको उद्दिष्टत्याग प्रतिमा कहते हैं। इसके २ भेद हैं— १ क्षुल्लक, २ ऐलक।

सम्यक्त्वके अनन्तर इस गुणस्थानके उत्पन्न होनेको पहिले अध:करण, अपूर्वकरण ये दो करण आवश्यक हैं।

उपशम सम्यक्त्वके साथ इस गुणस्थानके उत्पन्न होनेके लिये पहिले ३ करण आवश्यक हैं।

वेदक सम्यक्त्वके साथ इस गुणस्थानके उत्पन्न होनेके लिये पहिले दो करण आवश्यक हैं।

उक्त आवश्यक करण परिणामका काल समाप्त होते ही जीव संयतासंयत हो जाता है।

संयमासंयमलब्धिके स्थान अनगिनते हैं; उनमें सर्व जघन्य

स्थान किसीके भी नहीं होते। उससे असंख्यातगुणे विशुद्ध संयमासंयम, संयमासंयमसे मिथ्यात्वमें गिरनेके अभिमुख अतिसंक्लिष्टपरिणामी मनुष्यके होते हैं। यही संभव जघन्यसंयमासंयम है। इससे अनन्तगुणा संयमासंयम स्थान मिथ्यात्व जाने के अभिमुख अतिसंक्लिष्ट तिर्यंच देशसंयतका संभव सर्वजघन्य है। उससे अनन्तगुणा संयमासंयमसे गिरकर चौथे गुणस्थानमें जाने वाले तिर्यंचोंके होता है। उससे अनतगुणा संयमासंयमसे गिरकर चौथे गुणस्थानमें जाने वाले मनुष्योंके होता है। मिथ्यात्वसे संयमासंयमको प्राप्त होने वाले प्रथम समयवर्ती विशुद्ध संयतासंयत मनुष्यके उससे अनंतगुणा संयमासंयम स्थान है। मिथ्यात्वसे संयमासंयमको प्राप्त होने वाले प्रथम समयवर्ती विशुद्ध संयतासंयत तिर्यंचके उससे अनन्तगुणा है। असंयत वेदकसम्यक्त्वसे चढ़ने वाले प्रथमसमयवर्ती देशसंयत तिर्यञ्चके अनन्तगुणा संयमासंयम स्थान है। उससे अनन्तगुणा संयमासंयम स्थान असंयत सम्यक्त्वसे चढ़ने वाले विशुद्ध प्रथम समयवर्ती संयतासंयत मनुष्यका है। उससे अनन्तगुणा संयमासंयम स्थान मिथ्यात्वसे चढ़ते हुए अतिविशुद्ध द्वितीयसमयवर्ती संयतासंयत मनुष्यका है। उससे अनन्तगुणा संयमासंयम स्थान मिथ्यात्वसे चढ़ने वाले अतिविशुद्ध द्वितीय समयवर्ती संयतासंयत तिर्यंचका है। उससे अनन्तगुणा संयमासंयम स्थान सर्वविशुद्ध चढ़ते हुए संयतासंयत तिर्यंचका उत्कृष्ट संयमासंयम लब्धिस्थान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है। उससे अनंतगुणा संयमासंयम स्थान सर्वविशुद्ध चढ़े हुए संयतासंयत मनुष्यका उत्कृष्ट संयमासंयम लब्धिस्थान है।

गिरते हुएके अन्तिम स्थानका नाम प्रतिपात स्थान है। चढ़ते हुएके प्रथम स्थानका नाम प्रतिपद्यमानस्थान है। इनके अतिरिक्त सब स्थानोंका नाम अप्रतिपात अप्रतिपद्यमान स्थान है।

इस गुणस्थानमें एक जीवकी अपेक्षासे गति मनुष्य तिर्यंच में १, जाति पंचेन्द्रिय, त्रसकाय, मनोयोग ४, वचनयोग ४, औदारिककाययोग १—इस प्रकार ९ में एकदा एक, तीन वेदमें से १, १७ कषायमें से एकदा ७ या ६ या ५, ज्ञान ३ या १ में एकदा उपयोगसे १, संयमासंयम, दर्शन २ या ३ में उपयोग से एकदा १, लेश्या ३, शुभमें एकदा एक, भव्यत्वमार्गणामें भव्यत्व होता है।

इस गुणस्थानमें सम्यक्त्व प्रथमोपशम, द्वितीयोपशम, वेदक, क्षायिक इनमें कोई एक होता है।

संयतासंयत जीव संज्ञी, आहारक क्रमशः दोनों उपयोग वाला होता है।

इस गुणस्थानमें ध्यान आर्तध्यान ४, रौद्रध्यान ४, धर्म्य-ध्यान ३—इस प्रकार ११ में एकदा एक होता है। आस्रव ३७ में कमसे कम ८ व अधिकसे अधिक १४ होते हैं। भाव ३१ में एकदा २२ या २४ होते हैं।

http://www.jainkosh.org

संयतासंयत जीव सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त, छहों पर्याप्ति वाले, १० प्राणसंयुक्त व ४ संज्ञा वाले होते है।

संयतासंयत जीवके देहकी अवगाहना संख्यात घनांगुलसे लेकर एक हजार योजन तककी होती है।

भोगभूमिया मनुष्य, तिर्यंचोंके यह गुणस्थान नहीं होता है। विदेहक्षेत्रमें, चतुर्थ पंचमकालके भरत ऐरावतक्षेत्रमें, लवण-समुद्र, कालोदधिसमुद्र, उत्तरार्द्ध स्वयंभूरमणद्वीप, स्वयंभूरमण-समुद्रमें जन्मे हुए सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच व मनुष्यके यह गुणस्थान होता है। तिर्यंचके यह गुणस्थान जन्म लेनेके ३ अन्तर्मुहूर्त बाद हो सकता है, परन्तु मनुष्यके जन्म लेनेके बाद ८ वर्ष पश्चात् ही यह गुणस्थान हो सकता है।

इनका आवास लोकके असंख्यातवें भागमें है। मारणा-न्तिक समुद्घातकी अपेक्षा ६ बटा १४ राजू लोकका स्पर्श हो जाता है।

संयतासंयत जीव हमेशा कहीं न कहीं रहते हैं। एक जीव संयतासंयत गुणस्थानमें कमसे कम एक अन्तर्मुहूर्त रहता है व अधिकसे अधिक तिर्यंचकी अपेक्षा ३ अन्तर्मुहूर्त कम एक कोटि पूर्व तक व मनुष्यकी अपेक्षा ८ वर्ष कम एक कोटि पूर्व तक रहता है।

एक जीव संयतासंयत गुणस्थानमें छूटकर अन्य गुणस्थान में रहे और फिर संयतासंयत गुणस्थानमें आवे तो इस बीचका

Version 1

अन्तर कमसे कम तो अन्तर्मुहूर्त रह सकता है और अधिकसे अधिक ११ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल तक रह सकता है।

देशविरत गुणस्थानमें एक जीवकी अपेक्षा गति आदिके भेदसे नाना प्रकारके कर्मोंका बंध उदय सत्त्व है, परन्तु विस्तार भयसे यहाँ सामान्यालापसे कहते हैं।

देशविरतमें ६७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है, क्योंकि यहाँ मिथ्यात्वव्युच्छिन्न १६, सासनव्युच्छिन्न २५, असंयतव्युच्छिन्न अप्रत्याख्यानावरण ४ मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, वज्रवृषभ, औदारिक शरीर ये औदारिकाङ्गोपाङ्ग ये १० व आहारकद्विक—इन ५३ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है।

इस गुणस्थानमें उदय ८७ प्रकृतियोंका रहता है, क्योंकि यहाँ मिथ्यात्वव्युच्छिन्न ५, सासनव्युच्छिन्न ९, सम्यग्मिथ्यात्व १, असंयतमें व्युच्छिन्न नरकायु, देवायु, नरकगति, देवगति, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अङ्गोपाङ्ग, नरकगत्यानुपूर्व्य, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, देवगत्यानुपूर्व्य, दुर्भग अनादेय, अयशःकीर्ति व अप्रत्याख्यानावरण ४ ये १७, तीर्थंकर व आहारकद्विक—इन ३५ प्रकृतियोंका उदय नहीं होता।

संयतासंयतमें सत्त्व १४७ प्रकृतियोंका रहता है, यहाँ नरकायुका सत्त्व नहीं है, क्योंकि नारकीके तो यह गुणस्थान है नहीं और जिसने नरकायुका बन्ध करके सत्ता बना ली हो

उसके भी यह गुणस्थान नहीं हो सकता।

तिर्यंचके व्रतप्रतिमा तकके ही परिणाम हो सकते हैं। स्त्रीके ग्यारह प्रतिमामें ऐलक (आर्यिका) तकके ही परिणाम हो सकते हैं। पुरुषके ११ प्रतिमा व इससे आगेके भी परिणाम हो सकते हैं।

इस प्रकार संयतासंयत गुणस्थानका वर्णन करके अब छठवें प्रमत्तविरत गुणस्थानका कुछ निरूपण करते हैं—

प्रमत्तविरत गुणस्थान

जो सम्यक्त्व और सकलव्रत (महाव्रत) करि सहित हों, किन्तु संज्वलन कषायका तीव्र उदय होनेसे प्रमादसहित हो वह प्रमत्तविरत गुणस्थान कहलाता है। इसमें आहार करने, विहार करने, दीक्षा-शिक्षा प्रायश्चित्त देने आदि व इनके विकल्प करने रूप प्रमाद रहता है।

प्रमादके मूलमें १५ भेद हैं—विकथा ४, कषाय ४, इन्द्रियविषय ५, निद्रा १, स्नेह १। इनके संयोगसे उत्तर भेद ८० हो जाते हैं—जैसे १—स्त्रीकथालापी क्रोधी स्पर्शनेन्द्रियवशंगतो निद्रालुः स्नेहवान्। २—भोजनकथालापी क्रोधी स्पर्शनेन्द्रियवशंगतो निद्रालुः स्नेहवान् इत्यादि। अर्थात् जब विकथा पूर्ण हो गया तो विकथा शुरूसे ले और कषाय दूसरी ले, और फिर जब इस प्रकार करते-करते कषाय पूरी हो जाय तब कषाय शुरूसे ले और इन्द्रियविषय बदल दें। इसको सुगमतया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

समझनेके लिये इस नक्शेका आश्रय लेवें—

स्त्रीकथालापी १	भोजनकथालापी २	देशकथालापी ३	राजकथालापी ४	
क्रोधी ०	मानी ४	मायावी ८	लोभी १२	
स्पर्शनेन्द्रियवशी ०	रसनेन्द्रिय० १६	घ्राणेन्द्रिय० ३२	चक्षुरिन्द्रिय० ४८	श्रोत्रेन्द्रिय ६४
निद्रालु ०				
स्नेहवान् ०				

इस नक्शेसे जिस नम्बरका भेद निकालना हो ऊपर ऊपरसे नीचे तक पांचों खानोंके १-१ ऐसे नाम ले लेवे जिसके आगेके (नीचेके) अंक जोड़ने पर उतनी संख्याका नम्बर आ जावेगा और जिस भेदका नम्बर जानना हो तो उन नामोंके नीचेके अंक जोड़ देवे, जो संख्या आवे वह नम्बर हो जावेगा।

यह गुणस्थान प्रत्याख्यानावरण नामक चारित्र मोहके क्षयोपशमसे होता है, इसलिये इसमें भाव क्षायोपशमिक है और निमित्त मोहकर्म (क्षयोपशमरूप) है। इसमें प्रत्याख्याना-वरणके वर्तमानका उदयाभावी क्षय, आगामीका सदवस्था रूप उपशम व संज्वलन कषायका उदय रहता है, यही क्षयोपशम की स्थिति है।

इस गुणस्थानमें जीव अप्रमत्तविरत गुणस्थानसे ही आता

http://www.jainkosh.org

है तथा इस गुणस्थान वाला ७वें, ५वें, चौथे, तीसरे, दूसरे, पहिलेसे भी आ सकता है।

इस गुणस्थानमें जिसके आहारकऋद्धि हो गई हो उसके किसी सूक्ष्म तत्त्वमें शंका आदि होनेपर आहारकशरीर भी प्रकट होता है। यह आहारकशरीर जब तक बनते हुएमें अप-र्याप्त रहता है तब तक इस आहारकमिश्र काययोगीको अपर्याप्त कहते हैं। इस स्थितिमें आहारकवर्गणा व औदारिकवर्गणावोंके ग्रहणके निमित्त परिस्पंद होता है।

इस गुणस्थानमें परिहारविशुद्धिधारीके परिहारविशुद्धि-चारित्र होता है। इस जीवसे विहार करते हुए किसी भी प्राणी को रंच भी बाधा नहीं होती, चाहे कोई प्राणी नीचे भी आ जावे। विहार करते हुएमें अल्प समयको ७वां गुणस्थान भी हो जाता है, इस अपेक्षासे यह परिहारविशुद्धि सातवेंमें—भी मानी गई है।

जिस मुनिके आहारक, परिहारविशुद्धि, मनःपर्ययज्ञान, उपशमसम्यक्त्व, वेदद्वय (नपुंसक वेद स्त्रीवेद) में कोई वेद—इन पांचमें कोई एक हो तो शेष ४ बातें नहीं होंगी। इनका पर-स्परमें विरोध है, किन्तु उपशमसम्यक्त्वके साथ नपुंसकवेद व स्त्रीवेद हो सकते हैं तथा द्वितीयोपशमसम्यक्त्वके साथ मनः-पर्ययज्ञान हो सकता है।

इस गुणस्थानमें गति मनुष्य जाति पंचेन्द्रिय, त्रसकाय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

योग ११ पर्याप्तमें योग्यतया ९ व १०, किन्तु एकदा एक, अपर्याप्तमें १ आहारकमिश्रकाययोग, वेद ३ में कोई एक, परिहारविशुद्धि मनःपर्ययज्ञान द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि व आहारक वालेके पुरुषवेद, कषाय १३ एक जीवमें ६-५-४, ज्ञान २-३-४, परिहारविशुद्धि व आहारक वालेके २-३, संयम २, परिहारविशुद्धि वालेके संयम ३, दर्शन ३-२, लेश्या ३ में एक भव्यत्वमार्गणामें भव्यत्व होता है।

प्रमत्तविरत गुणस्थानमें उपशमसम्यक्त्व, वेदकसम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व ये तीन होते हैं, किन्तु परिहारविशुद्धि व आहारक वालेके वेदकसम्यक्त्व व क्षायिकसम्यक्त्व ये २ होते हैं।

इस गुणस्थान वाले संज्ञी, आहारक क्रमशः दोनों उपयोग वाले, निदान बिना ३ आर्तध्यान, ४ धर्म्यध्यान—इस तरह ७ ध्यानमें किसीके भी ध्याता होते हैं।

प्रमत्तविरत गुणस्थानमें २४ आस्रव होते हैं, एक जीवमें ७-६-५ आस्रव होते हैं। भाव ३१ होते हैं, एक जीवमें कमसे कम २४ व ज्यादासे ज्यादा २७ होते हैं।

प्रमत्तविरत साधुवोंके देहकी अवगाहना कमसे कम ३॥ हाथ अधिकसे अधिक ५२५ धनुष। अपर्याप्तिमें आहारकशरीर १ हाथका होता है।

प्रमत्तविरत साधुवोंके नाना जीवोंकी अपेक्षा ६३ प्रकृतियों का बंध होता है, क्योंकि मिथ्यात्वव्युच्छिन्न १६, सासनव्यु-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

च्छिन्न २५, असंयतव्युच्छिन्न १० व देशसंयतमें व्युच्छिन्न प्रत्याख्यानावरण ४ कषाय व आहारकद्विक—इन ५७ प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है।

प्रमत्तविरत साधुवोंके नाना जीवोंकी अपेक्षा ८१ प्रकृतियों का उदय रहता है, क्योंकि मिथ्यात्वव्युच्छिन्न ५, सासनव्युच्छिन्न ९, मिश्रव्युच्छिन्न १, असंयतव्युच्छिन्न १७, देशसंयतव्युच्छिन्न प्रत्याख्यानावरण चार तिर्यंग्गति, तिर्यगायु, उद्योत, नीचगोत्र ये ८ व तीर्थंकर प्रकृति—इन ४१ प्रकृतियोंका उदय नहीं होता।

प्रमत्तविरत साधुवोंके सत्त्व १४६ प्रकृतियोंका है, इनके नरकायु व तिर्यगायुका सत्त्व नहीं है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तविरतके १३६ का सत्त्व है, इनसे सम्यक्त्वघातक ७ प्रकृतियां तिर्यगायु व नरकायु इन ९ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है।

प्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीवोंका निवास ढाई द्वीपके अन्दर ही है, किन्तु अन्य अपेक्षाओं (मारणन्तिक समुद्घात) से मनुष्यलोक से असंख्यात गुणा क्षेत्र है व लोकका असंख्यातवां भाग ही स्पर्शन है।

प्रमत्तविरत साधु सदा होते हैं। एक जीवकी अपेक्षा इस गुणस्थानका काल जघन्य तो एक समय है। यह समय मरण की अपेक्षासे है। एक जीवका उत्कृष्ट काल इस गुणस्थानमें अंतर्मुहूर्त है।

एक प्रमत्तसंयत जीव अपने गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानमें जाकर पुनः इसी गुणस्थानमें आवे तो इस बीचका अन्तर जघन्य तो अन्तर्मुहूर्त होगा और अधिकसे अधिक दस अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल होगा।

इस गुणस्थानमें पुलाक, वकुश और कुशील ये तीन प्रकारके निर्ग्रन्थ हो सकते हैं।

इस गुणस्थानमें आचार्य, उपाध्याय और साधु—ये तीन ही परमेष्ठी होते हैं। ये परमेष्ठी पांच महाव्रत, तीन गुप्ति, पांच समितिका आचरण करते हैं। दस धर्मका पालन करते हैं। इनका अधिक समय भावनावोंके चिन्तवनमें जाता है। २२ परीषहोंको समतासे जीतते हैं। बारह प्रकारका यथायोग्य तप करते हैं। ये महात्मा जब प्रमादयुक्त होते हैं तब प्रमत्तविरत कहलाते हैं। पहिले प्रमादके १५ और अल्पविस्तारसे ८० कहे थे, उन्हें विस्तारसे कहा जावे तो ३७५०० भेद होते हैं, वे इस प्रकार हैं—

स्त्रीकथा	०	अनंता० क्रोध	०	स्पर्शने०	०	स्त्यान०	०	स्नेह	१
अर्थकथा	१५००	अनंता० मान	६०	रसने०	१०	निद्रानि०	२	मोह	२
भोजन०	३०००	अनंता० माया	१२०	घ्राणे०	२०	प्रचला०	४		
राजकथा	४५००	अनंता० लोभ	१८०	चक्षु०	३०	निद्रा	६		
चोरकथा	६०००	अप्र० क्रोध	२४०	श्रोत्रे०	४०	प्रचला			
वैरकथा	७५००	अप्र० मान	३००	मनो०	५०				

http://www.jainkosh.org

परपाखं०	९०००	अप्र० माया	३६०
देशकथा	१०५००	अप्र० लोभ	४२०
भाषाकथा	१२०००	प्रत्या० क्रोध	४८०
गुणबंध०	१३५००	प्रत्या० मान	५४०
देवीकथा	१५०००	प्रत्या० माया	६००
निष्ठुर०	१६५००	प्रत्या० लोभ	६६०
परपैशू०	१८०००	संज्व० क्रोध	७२०
कंदर्पकथा	१९५००	संज्व० मान	७८०
देशकाल०	२१०००	संज्व० माया	८४०
भंडकथा	२२५००	संज्व० लोभ	९००
मूर्खकथा	२४०००	हास्य	९६०
आत्मप्र०	२५५००	रति	१०२०
परपरि०	२७०००	अरति	१०८०
परजुगु०	२८५००	शोक	११४०
परपीड़ा	३००००	भय	१२००
कलह	३१५००	जुगुप्सा	१२६०
परिग्रह	३३०००	पुंवेद	१३२०
कृष्याद्य०	३४५००	स्त्रीवेद	१३८०
संगीतव०	३६०००	नपुंसक वेद	१४४०

इनमें पहिला भेद हुआ स्त्रीकथालापी अनंतानुबंधी क्रोधी स्पर्शनेन्द्रियवशी गत: स्त्यानगृद्धिगत: स्नेही।

दूसरा भेद भी इसी तरह केवल स्नेही की जगह कहना मोही।

तीसरा भेद—स्त्रीकथालापी अनंतानुबंधक्रोधी स्पर्शनेन्द्रियवशंगतो निद्रानिद्रागतः स्नेही। इसी प्रकार क्रमसे लगाते जाना। भेद नामका नम्बर जानने और नम्बरके नाम जाननेकी रीति पूर्वोक्त प्रकार है, जैसी प्रमादके अस्सी भेदमें कही गई थी।

यह सब प्रमाद पहिले गुणस्थानमें तीव्र है, उससे ऊपर-ऊपर क्रमसे मंद होता चला गया है।

प्रमत्तविरत नाम होनेसे इसके विशेष प्रमाद नहीं समझना। पहिले गुणस्थानसे छठे गुणस्थान तक सभी प्रमत्त हैं।

Version 1

छठे गुणस्थानके बाद प्रमाद नहीं रहता और छठेमें अत्यल्प प्रमाद रहता है। जो प्रमत्त होते हुए भी संयत हैं वे प्रमत्त संयत कहलाते हैं। ३७५०० भेदमें प्रमाद हैं उनमेंसे कुछ ही प्रमाद इस गुणस्थानमें हैं, सब नहीं।

इस प्रकार प्रमत्तविरतका संक्षेपमें वर्णन करके अब अप्रमत्तसंयतका वर्णन करते हैं—

अप्रमत्तविरत गुणस्थान

जहाँ सम्यक्त्व एवं महाव्रत है तथा संज्वलनकषायके मंद उदयसे प्रमाद भी नहीं है उसे अप्रमत्तविरत गुणस्थान कहते हैं।

इस गुणस्थानके २ भेद है—स्वस्थान अप्रमत्तविरत व सातिशय अप्रमत्तविरत।

जो अप्रमत्तविरत आगे गुणस्थानमें जानेका अपूर्व परिणाम नहीं कर रहा और छठेमें जावेगा वह स्वस्थान अप्रमत्तसंयत है। जो छठेमें न जा सके, किन्तु मरण कर चौथेमें जावेगा वह भी स्वस्थान अप्रमत्तसंयत है। सातवेंसे छठेमें, छठेसे सातवें गुणस्थानमें जानेका क्रम संख्यात हजार बार बना रहता है।

जो श्रेणी चढ़नेके अभिमुख है वह सातिशय अप्रमत्त है।

सबसे पहिले जो अप्रमत्तविरत गुणस्थान होता है वह छठे गुणस्थानसे नहीं होता, क्योंकि छठे गुणस्थानमें जीव सातवें गुणस्थानसे ही आता है।

पहिले, चौथे, पांचवें व छठे इन गुणस्थानोंके पश्चात् ही अप्रमत्तसंयत गुणस्थान होता है।

अप्रमत्तविरत साधु छठेमें या अपूर्वकरण उपशमक अथवा अपूर्वकरण क्षपकमें जाता है। यदि मरण हो तो चौथे गुणस्थानमें पहुंचता है।

अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें नाना जीवोंकी अपेक्षा ५९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। यहाँ मिथ्यात्वव्युच्छिन्न १६, सासनव्युच्छिन्न २५, असंयतव्युच्छिन्न १०, देशसंयतव्युच्छिन्न ४, प्रमत्तसंयत व्युच्छिन्न अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशःकीर्ति, अरति, शोक—ये ६ इस प्रकार प्रमत्तान्त बंधव्युच्छिन्न ६१ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है।

इस गुणस्थानमें नाना जीवकी अपेक्षा ७६ प्रकृतियोंका उदय रहता है, क्योंकि इसमें मिथ्यात्वव्युच्छिन्न ५, सासनव्युच्छिन्न ९, मिश्रव्युच्छिन्न १, असंयतव्युच्छिन्न १७, देशविरतव्युच्छिन्न ८, प्रमत्तसंयत व्युच्छिन्न आहारक शरीर आहारकाङ्गोपाङ्ग स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला ये ५ इस प्रकार प्रमत्तान्त उदय व्युच्छिन्न ४५ व तीर्थंकर प्रकृति इन ४६ प्रकृतियोंका उदय नहीं हो सकता।

अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें सत्त्व १४२ का हो सकता है यहाँ नरकायु व तिर्यगायुका सत्त्व नहीं है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि प्रमत्तविरतके १३९ तकका ही सत्त्व हो सकता है, इसके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सम्यक्त्व घातक ७ प्रकृति व नरकायु तिर्यंगायु नहीं है ।

सर्वप्रथम महाव्रतका परिणाम सप्तम गुणस्थानमें होता है, इसको सकलचारित्र सर्वदेशव्रत सरागचारित्र क्षायोपशमिक चारित्र आदि नामोंसे कहते हैं। सो इस गुणस्थानमें यदि मिथ्यादृष्टि आवे तो वह या तो प्रथमोपशम सम्यक्त्वके साथ संयमको पावेगा या वेदकसम्यक्त्वके साथ संयमको पावेगा । प्रथमोपशमसम्यक्त्वके साथ संयम पावे तो पहिले तीनों करण परिणाम आवश्यक हैं। यदि वेदकसम्यक्त्वके साथ पावे तो पहिले अधःकरण, अपूर्वकरण ये दो परिणाम आवश्यक हैं। वेदकसम्यक्त्वके साथ संयम पाने वाला जीव २८ की ही सत्ता वाला था, तीनों प्रकारके सम्यग्दृष्टि असंयत व संयतासंयत गुणस्थानसे संयमको पावे तो भी २ करण ही आवश्यक हैं।

सर्वप्रथम अप्रमत्तसंयत होनेके पश्चात् वह सातिशय अप्रमत्तविरत अर्थात् ऊपरके गुणस्थानोंमें जानेका पुरुषार्थ नहीं कर पाता, किन्तु प्रमत्तविरत होता है और प्रमत्तविरतसे अप्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरतसे प्रमत्तविरत, इस प्रकार संख्यात हजार बार परिवर्तन करता है।

अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें ही द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकी निष्ठापना होती है। चौथेसे सातवें गुणस्थान तकका कोई भी वेदक सम्यग्दृष्टि जीव तीनों करण परिणामोंके द्वारा अनंतानुबन्धीका विसंयोजन कर सकता है। अनन्तानुबंधीके विसंयोजन

के बाद अप्रमत्तसंयत होकर पुनः प्रमत्तसंयत अप्रमत्तसंयतमें अनेक परावर्त करके अप्रमत्तसंयत होकर तीनों करणोंके द्वारा दर्शन मोहका अन्तर करके उपशम कर देता है। पुनः प्रमत्तविरत अप्रमत्तविरतमें अनेकों परावर्त करके कषायके उपशमके लिये अधःकरण करता है, इस स्थितिमें यह जीव सातिशय अप्रमत्त कहलाता है।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयत कषायोंके उपशमके लिये भी अधःकरण कर सकता है। यदि कषायोंके उपशमका कार्य करे तो उपशमश्रेणीपर चढ़ेगा व यदि कषायोंके क्षयके लिये वह करण करे तो क्षपक श्रेणी चढ़ेगा। यह भी सातिशय अप्रमत्तविरत है। यहाँ यह विशेष जानना कि क्षायिक सम्यक्त्वकी चौथेसे सातवें तकमें कहीं भी निष्ठापना होती है और उसमें भी पहिले करणत्रयसे विसंयोजना-क्षय पश्चात् अल्प विश्राम करके दर्शनमोहका क्षय किया जाता है।

क्षायोपशमिक संयममें भी स्थान असंख्यात लोक प्रमाण है, उनमेंसे सर्वजघन्य संयमस्थान उसके है जो अतिसंक्लेश परिणामयुक्त मिथ्यात्वमें गिरने वाला प्रमत्तसंयत जीव होता है। उससे अनन्तगुणे संयमका स्थान मिथ्यात्वमें जाने वाले प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट संयम है। संयमसे गिरने वाले सभी जीव प्रमत्तविरत समझना चाहिये।

उस स्थानसे अनन्तगुणे संयमका स्थान अतिसंक्लिष्ट

http://sahjanandvarnishastra.org/

अविरतसम्यक्त्वको प्राप्त होने वाले संयमीका जघन्यसंयमस्थान है। इससे अनंतगुणे संयमका स्थान योग्य संक्लिष्ट इसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान है। यह भी प्रमत्तविरत है।

उससे अनन्तगुणे संयमस्थान अतिसंक्लिष्ट संयमासंयममें आने वाले संयमीका जघन्य संयमस्थान है। योग्यसंक्लेशी इसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान उससे अनन्तगुणा है। यह भी प्रमत्तविरत है।

उससे अनन्तगुणा संयमस्थान आर्यखंडसे उत्पन्न हुए मिथ्यादृष्टि मनुष्यके संयत होनेके प्रथम समयमें होता है। यह अप्रमत्तविरत है।

उससे अनन्तगुणा संयमस्थान म्लेच्छ खंडमें उत्पन्न हुये मिथ्यादृष्टि मनुष्यके संयत होनेके प्रथम समयमें होता है।

इससे अनन्तगुणा देशसंयमी म्लेच्छ मनुष्यके संयमके होने के प्रथम समयमें होता है।

इससे अनन्तगुणा संयमस्थान देशसंयत आर्यमनुष्यके संयत होनेके प्रथम समयमें होता है।

अप्रतिपातप्रतिपद्यमानस्थान भी असंख्यातलोक प्रमाण है।

अप्रमत्तगुणस्थानमें सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त, ६ पर्याप्तियाँ। १० प्राण, संज्ञा तीन, गति मनुष्य, जाति पञ्चेन्द्रिय, त्रसकाय, योग ६ में एकदा एक, तीन वेदमें कोई एक, १३ कषायमें एक

जीवके ६-५-४, ज्ञान ४-३-२ में उपयोग एकदा १, संयम २-३, दर्शन २-३ में, उपयोगसे १, लेश्या ३ में एक, भव्यत्व होते हैं।

अप्रमत्तविरतके सम्यक्त्व ३ में एक होता है। परन्तु परिहारविशुद्धि व आहारक वालेके उपशमसम्यक्त्व कोईसा भी नहीं होता है।

अप्रमत्तसंयत संज्ञी आहारक क्रमशः दोनों उपयोग वाला ७ ध्यानोंसे किसीके भी ध्याता होते हैं।

इस गुणस्थानमें आस्रव २२ होते हैं, उनमें एक जीवके ५ या ६ या ७ होते हैं। भाव ३१ होते हैं। एक जीवमें एकदा कमसे कम २२ अधिकसे अधिक २५ होते हैं।

यह गुणस्थान भी प्रत्याख्यानावरणके क्षयोपशमसे होता है, किन्तु विशेषता इतनी है कि संज्वलन कषायका मंद उदय रहता। अप्रमत्तसंयतके प्रत्याख्यानावरणका वर्तमान उदयाभावी क्षय व आगामी उदयमें आने योग्य प्रत्याख्यानावरणका सदवस्थारूप उपशम तथा संज्वलन कषायका मंद उदय रहता है, यही क्षयोपशमी स्थिति है। अतः यह क्षायोपशमिक भाव है और निमित्तमोहका है।

कषायोंके उपशम या क्षयके लिये होने वाले अधःकरण परिणामसे पहिले सभी स्थितियोंमें ,अप्रमत्तविरत स्वस्थान कहलाता है। कषायोंके उपशम या क्षयके लिये होने वाले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अधःकरणमें सातिशय अप्रमत्तविरत कहलाता है। यहाँ यदि उपशमका कार्य प्रारम्भ हो तो उपशम श्रेणि चढ़ेगा और यदि क्षयका कार्य प्रारंभ हो तो क्षपक श्रेणि चढ़ेगा।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि दोनोंमें किसी भी श्रेणिपर चढ़ सकता है, परन्तु द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणि ही चढ़ सकता है।

अब प्रकरणवश अधःकरणका स्वरूप कहते हैं—जहाँ ऊपरिमसमयवर्ती जीवोंके परिणाम नीचेके समयवर्ती जीवोंके परिणामके सदृश हों उसे अधःकरण कहते हैं। चारित्रविषयक विविध विषम अवस्थाके अनन्तर सम अवस्थामें जानेके लिये यह पहिला यत्न है।

अधःकरणका काल अन्तर्मुहूर्त है। जैसे प्रथम समय में अनेक जीवोंने अधःकरण परिणाम किया तो योग्य जघन्य और उत्कृष्टकी सीमा करके नाना प्रकारके उनके परिणाम हुए, फिर उन जीवोंने अगले समय प्रवेश किया और परिणाम बढ़े। उस समय अन्य जीवोंने प्रथम प्रवेश किया। इस तरह सब आगे बढ़ते जाते और अन्य जीव प्रवेश करते जाते। यहाँ प्रवेश करने वाले जीवोंके जघन्य परिणामके अतिरिक्त अन्य परिणाम कुछ ऊपर वालोंसे मिल जाते हैं अर्थात् उनके सदृश हैं तथा द्वितीयादि समय वालोंके परिणाम भी कुछ ऊपर वालोंके परिणामके समान हैं। अन्तिम समयका उत्कृष्ट परि-

http://www.jainkosh.org

णाम नीचेके समान नहीं। इस तरह अधःकरणके सर्वजघन्य व सर्वोत्कृष्ट परिणामके अतिरिक्त शेष परिणाम कुछ ऊपर नीचे समय वालोंके समान रहते हैं। इसका दृष्टान्त इस प्रकार है, जैसे अधःकरणका काल १६ समय यहाँ प्रत्येक समयके परिणामके प्रकार ४ करें—

(अगले पृष्ठपर बनी तालिका देखें)

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समय	प्र०खंड	द्वि०खंड	तृ०खंड	च०खंड	सर्व धन	
१६	५४	५५	५६	५७	२२२	चतुर्थ निर्वर्गणा का०
१५	५३	५४	५५	५६	२१८	
१४	५२	५३	५४	५५	२१४	
१३	५१	५२	५३	५४	२१०	
१२	५०	५१	५२	५३	२०६	तृतीय निर्वर्गणा का०
११	४९	५०	५१	५२	२०२	
१०	४८	४९	५०	५१	१९८	
९	४७	४८	४९	५०	१९४	
८	४६	४७	४८	४९	१९०	द्वितीय निर्वर्गणा का०
७	४५	४६	४७	४८	१८६	
६	४४	४५	४६	४७	१८२	
५	४३	४४	४५	४६	१७८	
४	४२	४३	४४	४५	१७४	प्रथम निर्वर्गणा का०
३	४१	४२	४३	४४	१७०	
२	४०	४१	४२	४३	१६६	
१	३९	४०	४१	४२	१६२	

इस अधःप्रवृत्त करणमें प्रथम समयकी जघन्य विशुद्धि सबसे कम है, उससे द्वितीय समयकी जघन्य विशुद्धि अनंतगुणित है। उससे तृतीय समयकी जघन्य विशुद्धि अनंतगुणित है। इस प्रकार यह क्रम प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अंतिम समयवर्ती जघन्य विशुद्धि तक ले जाना चाहिये। जैसे दृष्टान्तमें चार समय प्रथम निर्वर्गणाकांडकके हैं। तो तृतीय समयकी जघन्यविशुद्धिसे अनंतगुणित चौथे समयकी जघन्य विशुद्धि हुई। अब उससे अनन्त गुणी विशुद्धि प्रथमसमयकी उत्कृष्ट विशुद्धि है। ऐसा लौटकर नीचेके समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिपर आनेमें जहाँसे लौटना हुआ वहाँ तक एक निर्वर्गणाकाण्डक होता है। प्रथमनिर्वर्गणा कांडकके अन्तिम समय (४) की उत्कृष्टविशुद्धि से द्वितीय निर्वर्गणाकांडकके प्रथमसमय (५) वर्ती जीवकी जघन्य विशुद्धि है, उससे अनन्तगुणी विशुद्धि द्वितीय निर्वर्गणाकांडकके द्वितीय समय (६) वर्ती जीवकी जघन्य विशुद्धि, उससे तृतीय (७) की, यह क्रम द्वितीयनिर्वर्गणाकांडक के अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धि तक चला, जैसे दृष्टान्तमें उससे अनन्तगुणी विशुद्धि ८वें समयवर्ती जीवकी है। इससे अनन्तगुणी विशुद्धि द्वितीयनिर्वर्गणाकांडकके प्रथम समय (५) वर्ती जीवकी उत्कृष्ट विशुद्धि है। इस तरह आगे भी लगाते जाना।

इसकी रचनाका प्रकार संदृष्टि द्वारा इस प्रकार जानना—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

संदृष्टिमें सर्वधन ३०७२ है, समय गच्छ १६, चय ४, संख्यात का प्रमाण ३ व निर्वर्गणाकाण्डक ४ है।

पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं—पद १६ × १६ = २५६ × ३ संख्यात = ७६८। ३०७२ भाग ७६८ = ४ चय अथवा आदिधनोनं गणितं पदोनपदकदिदलेन संभाजिदं—एक गच्छ कम, गच्छकी कृतिके आधेका आदि धनसे उन सर्वधनमें भाग देवे, जो बचे वह चय है। जैसे १६ × १६ = २५६—१६ = २४० भाग २ = १२० भाग "३०७२—२५९२ = ४८०" = ४ चय।

आदिधनसे उन सर्वधन अर्थात् उत्तरधन (चयधन) व्येक-पदार्थघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनम्—एक कम गच्छके आधेमें चयका गुणा करे, फिर लब्धमें गच्छका गुणा करे, १६—१ = १५ भाग २ = ७॥ × ४ = ३० × १६ = ४८० उत्तरधन।

आदिधन—३०७२—४८० = २५९२ आदिधन। अथ-वापदहतमुखमादिधनम्—मुख १६२ × पद १६ = २५९२ आदिधन।

अन्तसमयसम्बन्धी परिणामधन—व्येकपदं चयाभ्यस्तं तदादिसहितं धनम्—एक कम गच्छमें चयका गुणा कर उसमें प्रथमसमयका धन मिलावे। जैसे १६ — १ = १५ × ४ = ६० + १६२ = २२२ अन्तिमसमयसम्बंधी परिणामधन।

अनुकृष्टिचय—उर्द्धरचनाचयमें अनुकृष्टि गच्छका भाग

http://www.jainkosh.org

देवे—जैसे ४ भाग ४ = १ अनुकृष्टिचय (समयखंडोंमें बढ़ने वाला चय)।

प्रथम समयके प्रथम खंडका धन—चयभाजितं व्येकचयार्धं-घ्नचयोनमाद्यधनम्—एक कम चयके आधेमें चयका गुणा करे, जो लब्ध हो उतना प्रथम समयके धनमें घटाकर उसमें चयका भाग देवे—जैसे ४—१ = ३ भाग २ = १॥ × ४ = ६। १६२—६ = १५६ भाग ४ = ३९ प्रथम समयके प्रथम खंडका धन।

सर्वधन—मुहभूमीजोगदले पदगुणिदे पदधणं होदिमुख १६२ + भूमि २२२ = ३८४ भाग २ = १९२ × गच्छ (पद) १६ = ३०७२ सर्वधन।

आद्यसमयधन—व्येकपदघ्नचयोनमंतिमधनम्—एक कम पदसे गुणित चयसे कम अन्तिमधन आद्यसमयधन है। १६—१ = १५ × ४ = ६०। २२२-६० = १६२ प्रथम समयका धन।

उक्तसंदृष्टि द्वारा अधःकरणके यथार्थ परिणामोंका परि-ज्ञान कर लेना चाहिये।

अधःकरण निम्नलिखित अवसरोंपर होता है—१. प्रथ-मोपशमसम्यक्त्वसे पहिले दर्शनमोहके अन्तरकरणके लिये, २. वेदकसम्यक्त्वके लिये, ३. संयमासंयमके लिये, ४ द्वितीयो-पशमसम्यक्त्वसे पहिले अनन्तानुबन्धी विसंयोजनाके लिये, ५. द्वितीयोपशमसे पहिले दर्शनमोहके अन्तरकरणके लिये,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

६. सकलचारित्रके लिये, ७. क्षायिक सम्यक्त्वसे पहिले अनंतानुबंधीको विसंयोजनाके लिये, ८. क्षायिक सम्यक्त्वसे पहिले दर्शनमोहकी क्षपणाके लिये, ९. चारित्रमोहके उपशमके लिये, १०. चारित्रमोहके क्षयके लिये।

इस अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें ही अधिकसे अधिक बार ३ अधःकरण हों तो निम्न प्रकार होंगे—१. द्वितीयोपशमको अनंतानुबन्धीकी विसंयोजनाके लिये, २. द्वितीयोपशमको दर्शन-मोहके अन्तरकरणके लिये, ३. चारित्रमोहके उपशलके लिये पश्चात् श्रेणी चढ़कर गिरे तब वेदकसम्यक्त्व हो, पश्चात् ४. क्षायिकसम्यक्त्वको अनन्तानुबंधीकी विसंयोजनाके लिये, ५. क्षायिकसम्यक्त्वको दर्शनमोहकी क्षपणाके लिये, ६. चारित्रमोहके क्षयके लिये।

ऐसा भी हो सकता है कि इस गुणस्थानमें एक बार भी करण न हो और कुछ काल रहकर नीचे गिर जावे। इस गुणस्थानको पानेके लिये जो करण हुआ वह इससे पहिले प्रथम या चतुर्थ अथवा पञ्चम गुणस्थानमें हुआ था।

इस गुणस्थानमें किसी भी आयुका बंध नहीं होता, किन्तु यदि प्रमत्तविरतमें देवायुका बंधका प्रारम्भ किया हो और बंध-कालमें अप्रमत्तविरत हो जावे तो देवायु बंधको पूर्ण कर देता है, इस तरह इस गुणस्थानमें देवायुका बंध है।

यह गुणस्थान अवस्थामें होता व आहार, विहार आदि

करते हुए भी कभी अल्प अन्तमुहूर्तको संयतके हो सकता है, किन्तु निद्रामें यह गुणस्थान नहीं होता। इस प्रकार अप्रमत्त-विरत गुणस्थानका वर्णन करके अब अपूर्वकरण गुणस्थानका वर्णन करते हैं—

अपूर्वकरण गुणस्थान

चारित्रमोहके उपशम या क्षयके लिये अप्रमत्तविरत साधु जब अधःकरण करके अपूर्वकरणमें पहुंचता है तो अपूर्वकरणके प्रथम समयसे ही यह अपूर्वकरण गुणस्थान होता है।

अपूर्वकरणका शब्दार्थ—अ = नहीं, पूर्व = पहिले, करण = परिणाम। अर्थात् जो परिणाम पहिले समयमें उसके या अन्यके नहीं थे, उन परिणामोंका होना। इससे यह तात्पर्य निकला कि अपूर्वकरणमें विवक्षित समयवर्ती मुनिके परिणाम इससे पहिले या अगले समयवर्ती मुनियोंके परिणामसे मिलते नहीं हैं।

इस परिणाममें प्रतिसमय ६ कार्य विशेष होते रहते हैं—(१) प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धता, (२) पूर्व बंधे हुए कर्मकी असंख्यातगुणी स्थितिका घात, (३) असंख्यातगुणी कम स्थितिके हो होकर ही नवीन कर्मोंका बंधना, (४) पूर्व बंधे हुए कर्मोंका असंख्यातगुणा अनुभागका घात, (५) असंख्यात गुणे कर्मवर्गणाओंकी निर्जरा व (६) पापप्रकृतियोंका पुण्यप्रकृतियोंमें बदलना। अन्य स्थानोंमें भी अपूर्वकरण परिणाम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

होता है वहाँ भी तत्प्रायोग्य ये छहों कार्य लगा लेना चाहिये।

अपूर्वकरण गुणस्थान प्रत्याख्यानावरणके वर्तमानके उदयाभावी क्षय व आगामीके सदवस्थारूप उपशम व संज्वलनके मंद उदयसे व अपूर्वकरण परिणाम द्वारा उत्पन्न होता है।

चारित्रमोहके क्षयोपशमकी स्थितिमें यह गुणस्थान उत्पन्न होता है, इसलिये इसे क्षायोपशमिक कहा गया है। क्षपकश्रेणीके इस गुणस्थान वाला आत्मा नियमसे क्षायिक चारित्र अन्तर्मुहूर्तमें प्रकट करेगा तथा मोह (कषाय) क्षयके लिये करण परिणाम कर रहा है, इसलिये क्षपकश्रेणी वाले अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयतके उपचारसे क्षायिक भाव भी कहा गया है तथा उपशमश्रेणी वाला अपूर्वकरण प्रविष्टशुद्धिसंयत मरणके अभावमें अन्तर्मुहूर्तमें नियमसे औपशमिक चारित्र प्रकट करेगा तथा कषायके उपशमके लिये करण परिणाम कर रहा है। इसलिये इसके उपचारसे औपशमिक भाव कहा गया है। सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टिके क्षायिक भाव हैं और द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टिके औपशमिक भाव हैं। इन सभी प्रसंगोंमें निमित्त मोहका है अर्थात् मोहके क्षयोपशमकी अपेक्षा है, कहीं उपशमकी अपेक्षा है और कहीं क्षयकी अपेक्षा है।

इस गुणस्थानमें सामान्यरूपसे ५८ प्रकृतियोंका बंध होता है, क्योंकि प्रमत्तान्तबंधव्युच्छिन्न ६१ अप्रमत्तविरत गुणस्थानमें बंधव्युच्छिन्न देवायु—इन ६२ प्रकृतियोंका बंध नहीं होता है।

http://www.jainkosh.org

इस अपूर्वकरण गुणस्थानके कालके ७ भाग हैं—प्रथम भागमें ५८ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम व षष्ठ भागोंमें ५६ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। इनमें निद्रा, प्रचला इन दो प्रकृतियोंका भी बन्ध नहीं होता है। सातवें भागमें २६ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। इसमें देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियकशरीर, वैक्रियकाङ्गोपाङ्ग, आहारकशरीर, आहारकाङ्गोपाङ्ग, तैजसशरीर, कार्माणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्व्य वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, तीर्थंकर और निर्माण नामकर्मकी इन ३० प्रकृतियोंका बंध नहीं होता है।

अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयतोंके उदय ७२ प्रकृतियोंका रहता है। इसमें प्रमत्तान्त उदयव्युच्छिन्न ४५ व अप्रमत्तविरतमें उदयव्युच्छिन्न ४ व तीर्थंकरप्रकृति इन ५० प्रकृतियोंका उदय नहीं रहता है।

इस गुणस्थानमें सत्त्व १४२, १३९, १३८ प्रकृतियोंका होता है। इसमें जीव ३ प्रकारके हैं—१. द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमक, २. क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशमक, ३. क्षायिकसम्यग्दृष्टि क्षपक। द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमकके अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभका विसंयोजन हो जानेसे स

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं है और तिर्यगायु व नरकायुका पहिलेसे ही सत्त्व नहीं है। सो ये ६ प्रकृतियां घट जानेसे १४२ का सत्त्व युक्त है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशमकके अनंतानुबंधी ४ व दर्शन मोह ३—इन सातका सम्यक्त्वोत्पादमें ही क्षय हो जानेसे व तिर्यगायु नरकायुका पहिले सत्त्व न होनेसे ९ प्रकृतिका सत्त्व नहीं है, अतः उसके १३९ प्रकृतियोंका सत्त्व है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि-क्षपकके उक्त ९ व देवायु—इन दसका सत्त्व नहीं है। अतः क्षायिक सम्यग्दृष्टि अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयत क्षपकके १३८ प्रकृतियोंका ही सत्त्व है।

अब प्रकरणवश अपूर्वकरणपरिणामोंकी विशुद्धि ज्ञात करनेके लिये एक संदृष्टि लिखते हैं—इसकी रचनाकी पद्धति इस प्रकार है, जो अगले पृष्ठपर दर्शायी गई है—

८	५५३ – ५६८
७	५३७ – ५५२
६	५२१ – ५३६
५	५०५ – ५२०
४	४८९ – ५०४
३	४७३ – ४८८
२	४५७ – ४७२
१	४५६ तक
समय	योग–४०९६

सर्वधन ४०९६, आदि धन ३६४८, उत्तरधन ४४८, कालगच्छ ८, संख्यात प्रमाण ४, चय १६।

चय—पदकदि-संखेण भाजिदं पचयंगच्छकी कृति और संख्यातका सर्वधनमें भाग देनेसे चय निकलता है। जैसे ८×८ = ६४ × = २५६। ४०९६ भाग २५६ = १६।

उत्तरधन—व्येकपदार्थघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनम्—एक कम गच्छके आधेमें चयका गुणा करे, फिर उस लब्धमें गच्छका गुणा करे—८–१ = ७ भाग २ = ३॥ × १६–५६ × ८ = ४४८ उत्तरधन।

अंतिम समयसम्बंधी परिणामधन—व्येकपदं चयाभ्यस्तं तदादिसहितं धनम्—एक कम गच्छमें चयका गुणा कर उसमें प्रथमसमयका धन मिलावे। जैसे ८–१ = ७ × १६ = ११२ + ४५६ = ५६८ अन्तिमसमय परिणामधन।

आद्यसमयधन—व्येकपदघ्नचयोनमंतिमधनम्—एक कम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

गच्छसे चयका गुणा कर उसे अन्तिम धनमें से कम कर देवे—
८–१ = ७ × १६ = ११२ । ५६८–११२ = ४५६ ।

आदिधन—पदहतमुखामादिधनम्—मुखमें गच्छका गुणा करे ४५६ × ८ = ३६४८ यह आदिधन है ।

सर्वधन—मुहभूमीजोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि—४५६ + ५६८ = १०२४ भाग २ = ५१२ × ८ = ४०९६ ।

अपूर्वकरण परिणाममें विशुद्धितारतम्य—इसके प्रथम समयमें जो-जो जघन्य विशुद्धि है उससे अनन्तगुणी विशुद्धि प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि है । उससे अनन्तगुणी विशुद्धि द्वितीय समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि है । इस प्रकार अंतिम समयके उत्कृष्ट परिणाम तक चलाना चाहिये ।

इस गुणस्थानमें जीव सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त होता है, इसके पर्याप्तियाँ ६, प्राण १०, संज्ञा ४, गति मनुष्य, जाति पंचेन्द्रिय, त्रसकाय, ९ योग, वेद ३, कषाय १२ में ६-५-४ में उपयोगसे एकदा १, संयम २, दर्शन ३-२ में उपयोग एकदा १, लेश्या शुक्ल लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व २ द्वितीयोपशम व क्षायिक होते हैं ।

अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती जीव—आहारक, क्रमशः दोनों उपयोग वाले, पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानके ध्याता होते हैं ।

इसमें आस्रव १३, किन्तु एक जीवके ७-६-५ होते हैं ।

भाव २८, एक जीवमें २२-२३-२४-२५ होते हैं ।

अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयतके देहकी अवगाहना ३।। हाथसे ५२५ धनुष तककी होती है ।

इनका आवास ढाई द्वीपके भीतर ही है । क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग है × व स्पर्शन भी लोकके × असंख्यातवें भागमें होता है ।

अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयतोंमें उपशामक जीवोंका जघन्य-काल तो एक समय है व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । परन्तु क्षपक जीवोंका जघन्यकाल भी अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल भी अन्तर्मुहूर्त है । दोनोंमें नाना जीवोंमें उक्त दोनों प्रकारका वैसा ही काल है ।

क्षपक एक जीवमें यह नहीं होता कि अष्टम गुणस्थान छोड़कर अन्य गुणस्थानोंमें जाकर पश्चात् अष्टम गुणस्थानमें आवे, क्योंकि क्षपक जीव आगे गुणस्थानोंमें बढ़कर गुणस्थाना-तीत ही हो जावेगा ।

सर्व जीवकी अपेक्षा यह अन्तर आ सकता है कि कोई समय ऐसा रहे कि कोई भी जीव अष्टम गुणस्थानमें नहीं है तो ऐसा अन्तरकाल कमसे कम एकसमय और अधिकसे अधिक ६ माहका हो सकता है ।

अष्टम गुणस्थानवर्ती उपशमक एक जीव अष्टम गुण-स्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानमें रहे, पश्चात् अष्टम गुण-

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्थान पावे, इस बीचका अन्तर कमसे कम अन्तर्मुहूर्त और अधिकसे अधिक २८ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल होता है। इसमें गिरनेके अपूर्वकरणसे अन्तर लिया है, सो इसमें लगातार १२ अन्तर्मुहूर्त लगे, फिर संसारभ्रमण करके अपूर्वकरण होगा। उसके बाद निर्वाण पानेमें १६ अन्तर्मुहूर्त लगेंगे, इस प्रकार २८ अंतर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल अन्तर होता है।

नाना जीव उपशमकोंका अन्तर कमसे कम एक समय व अधिकसे अधिक वर्षपृथक्त्व (३ से ९ वर्ष तक) होता है।

इस अपूर्वकरण गुणस्थानमें उपशमक जीव ७वें या ९वें गुणस्थानसे आता है और यह अपूर्वकरणप्रविष्टविशुद्धिसंयत जाता भी ७वें में या ९वेंमें, किन्तु यदि इस गुणस्थानके अनंतर ही मरण हो जाय तो चौथे गुणस्थानमें जाता है और नियमसे देवगतिमें ही उत्पन्न होता है। चढते हुए में आठवेंके पहिले भागमें मरण नहीं होता।

क्षपक ७वें गुणस्थानसे ही अपूर्वकरणमें आता है, इसका मरण नहीं होता और न नीचे गिरना होता है, किन्तु विशुद्धिसे वर्द्धमान होकर ऊपरके गुणस्थानमें पहुंचता हुआ चारित्रमोहका क्षय करके व पुनः घातिया कर्मोंका क्षय करके पश्चात् अघातिया कर्मोंका क्षय करके सिद्ध ही होवेगा। इस प्रकार अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयत उपशमक व क्षपकका वर्णन करके अब

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं—

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान

जहाँ पूर्व व उत्तर समयवर्ती साधुवोंके परिणाम विलक्षण हों तथा समान समयवर्ती साधुवोंके परिणाम एकसे ही हों, समान हों उन परिणामोंको अनिवृत्तिकरण कहते हैं।

अ = नहीं, निवृत्ति = भेद अर्थात् जहाँ समान समयके परिणामोंमें भेद न हो उन करण अर्थात् परिणामोंको अनिवृत्ति-करण परिणाम कहते हैं।

यह गुणस्थान प्रत्याख्यानावरणके वर्तमान स्पर्द्धकके उदयाभावी क्षय, आगामी उदययोग्य उन्हीं स्पर्द्धकोंके सदव-स्थारूप उपशम व संज्वलन कषायके अतिमंद उदयसे अनि-वृत्तिकरण परिणामों द्वारा प्रकट होता है। यहाँ क्षयोपशम की दशा वर्तमान है अतः इस गुणस्थानमें क्षायोपशमिक भाव है, परन्तु कषायके उपशम या क्षयके लिये उपशमश्रेणि वाले अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्तीका यह परिणाम हुआ है व २० कषायोंका इस गुणस्थानमें उपशम भी कर देता है तथा मरण न हो तो अवश्य ही औपशमिक चारित्र प्रकट करेगा, अतः औपशमिक भाव भी माना गया है। तथा क्षपक श्रेणिवाले अनिवृत्तिकरण बादरसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयतका यह परिणाम कषायके क्षयके लिये प्रकट हुआ है और यह नियमसे शीघ्र क्षायिक चारित्र प्रकट करने वाला है व २० कषायोंका यहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

क्षय भी कर देता है, अतः इसके क्षायिक भाव भी कहा गया है, निमित्त सबमें मोह का है अर्थात् चारित्र मोहके क्षयोपशम से या उपशम व क्षयके कार्यसे यह गुणस्थान प्रकट हुआ है।

इस अनिवृत्तिकरणमें समानसमयवर्ती साधुके परिणाम एकसे ही होते हैं। यहाँ ऐसा भी नहीं रहा जैसे कि अपूर्व-करण परिणाममें होता था कि समानसमयवर्ती साधुवोंके परिणाम मिल भी जावें और न भी मिलें। यहां तो सबके वैसा ही परिणाम होता है। इसके उदाहरणका निम्नलिखित नक्शासे अनुमान कर सकते हैं—इस गुणस्थानका समय अपूर्वकरणसे आधा है।

समय	परिणाम
४	१३७६
३	१३१२
२	१२४८
१	११८४

अतः दृष्टान्तमें ८ समयके आधे ४ समय लिये हैं। इसमें दृष्टान्त पहिले समयवर्ती जितने भी साधु होंगे उन सबके ११८४ डिगरी का परिणाम होगा व दूसरे समयवर्ती साधुवोंका परिणाम १२८४ डिगरीका होगा। इसी तरह अनिवृत्तिकरणके सभी समयों में सदृश लगाना चाहिये।

http://www.jainkosh.org

इस गुणस्थानमें संज्वलनकषायका अतिमंद उदय होते हुए भी सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें होने वाले संज्वलन सूक्ष्म-लोभके मुकाबिले अधिक है, अतः इस गुणस्थानको बादरसाम्प-राय भी कहते हैं। वैसे बादरसाम्पराय पहले गुणस्थानसे लेकर नवमें गुणस्थान तक कहे गये हैं। जैसे असंयत पहिलेसे चौथे तक, प्रमत्त पहिले से छटे तक समझे जाते हैं।

अनिवृत्तिकरणबादरसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयत जीवके बंध २२ प्रकृतियोंका होता है, क्योंकि प्रमत्तान्तव्युच्छिन्न ६१ व अप्रमत्तव्युच्छिन्न १, अपूर्वकरणव्युच्छिन्न ३३—इन ९८ प्रकृतियोंका यहां बन्ध नहीं है।

इस बंध प्रकरणमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके ५ भाग करना। जिसमें पहिले भागमें बंध २२ का, दूसरे भागमें बंध २१ का, यहां पुरुषवेदका बन्ध नहीं होता। तीसरे भागमें बंध २० का, यहां संज्वलन क्रोधका बंध नहीं होता। चौथे भागमें १९ का बंध, इस भागमें संज्वलन मानका बंध नहीं होता। पांचवें भागमें १९ का बंध होता है, इस भागमें संज्वलन माया का बंध नहीं होता।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें उदय ६६ प्रकृतियोंका है क्योंकि यहां प्रमत्तान्त उदयव्युच्छिन्न ४५ व अप्रमत्तव्युच्छिन्न ४ व अपूर्वकरणव्युच्छिन्न हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये ६ तथा तीर्थंकर प्रकृति इन ५६ प्रकृतियोंका उदय

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं है।

इस उदयप्रकरणमें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके ५ भाग करिये— प्रथमभागमें उदय ६६ प्रकृतियोंका है, क्योंकि अपूर्व-करणव्युच्छिन्न हास्यादि ६ का उदय नहीं रहता। द्वितीय भागमें एक जीवकी अपेक्षा ६४ का उदय है। इसमें जो जिस वेदके उदयसे चढ़ा है उसके उस वेदका उदय है, शेष २ वेदका उदय नहीं। तृतीय भागमें उदय ६२ का है इसमें अवशिष्ट वेदका उदय नहीं है। चतुर्थ भागमें ६२ का है इसमें संज्वलन क्रोधका उदय नहीं है। पञ्चम भागमें उदय ६१ का है इसमें संज्वलन मानका उदय नहीं है, इसमें माया और वादर लोभ की उदयव्युच्छित्ति हो जाती है, जिससे सिद्ध है कि यहीं तक संज्वलन वादर लोभ है आगे नहीं रहेगा।

इस गुणस्थानमें सत्त्व १४२ प्रकृतियों तक का है। इसे विशेष रूपसे कहते हैं—अनिवृत्तिकरणवादरसाम्परायप्रविष्ट-शुद्धिसंयत जीव ३ प्रकारके हैं—१ द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशमक, २ क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमक, ३ क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षपक। इनमें द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशमकके १४२ का सत्त्व है क्योंकि इसके विसंयोजित अनन्तानुबन्धी ४ व नरकायु, तिर्यंगायु इन ६ का सत्त्व नहीं है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमकके १३६ का सत्त्व है, क्योंकि इसके सम्यक्त्वघाती सात प्रकृति व तिर्यंगायु नरकायुका सत्त्व नहीं है।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि अनिवृत्तिकरणबादरसाम्पराय प्रविष्ट शुद्धिसंयत क्षपक जीवके कालके ९ भाग करिये। इसमें प्रथम भागमें सत्त्व १३८ का है, इसमें सम्यक्त्वघाती ७ प्रकृति व नरकायु तिर्यंगायु देवायु इन १० का सत्त्व नहीं है। द्वितीय भागमें ११२ प्रकृतियोंका सत्त्व है, इसमें पूर्वोक्त १० व प्रथम भाग व्युच्छिन्न नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंगति, तिर्यंगत्यानुपूर्वी, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, उद्योत, आताप, एकेन्द्रिय, स्थावर, साधारण सूक्ष्म स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला ये १६ प्रकृति इस प्रकार २६ का सत्त्व नहीं है। तृतीयभागमें ११४ का सत्त्व है, इसमें पूर्वोक्त २६ तथा द्वितीय भाग व्युच्छिन्न अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ ये आठ, इस प्रकार ३४ का सत्त्व नहीं है। चतुर्थभागमें ११३ का सत्त्व है, इसमें पूर्वोक्त ३४ व तृतीयभागव्युच्छिन्न नपुंसक वेद इस प्रकार ३५ का सत्त्व नहीं है। पञ्चमभागमें ११२ का सत्त्व है, इसमें पूर्वोक्त ३५ व चतुर्थभागव्युच्छिन्न स्त्रीवेद इन ३६ का सत्त्व नहीं है। षष्ठ भागमें १०६ प्रकृतिका सत्त्व है। इस में पूर्वोक्त ३६ व पञ्चमभागव्युच्छिन्न हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये ६ इस प्रकार ४२ का सत्त्व नहीं है। सप्तम भागमें १०५ का सत्त्व है, इसमें पूर्वोक्त ४२ व पुरुषवेद इन ४३ का सत्त्व नहीं है। अष्टम भागमें १०४ का सत्त्व है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

इसमें पूर्वोक्त ४३ व संज्वलन क्रोध इन ४४ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है। नवम भागमें १०३ प्रकृतियोंका सत्त्व है, इसमें पूर्वोक्त ४४ व संज्वलन मान इन ४५ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है। इसी नवम भागमें संज्वलन माया की भी सत्त्वव्युच्छित्ति हो जाती है जो आगे न रहेगी।

इस प्रकार नवमें गुणस्थानमें प्रकृतियोंका बंध उदय सत्त्व पृथक् पृथक् कहा इनको सम्मिलित रूपसे जाननेके लिये निम्नलिखित नक्शेमें देखें—

भाग	सत्त्व	बंध	उदय
१	१४६, १४२, १३९, १३८	२२	६६
२	१४६, १४२, १३९, १२२	२२	६६
३	१४६, १४२, १३९, ११४	२२	६६
४	१४६, १४२, १३९, ११३	२२-२१	६५-६४
५	१४६, १४२, १३९, ११२	२२-२१	६४-६३
६	१४६, १४२, १३९, १०६	२१	५३
७	१४६, १४२, १३९, १०५	२१-२०	६३
८	१४६, १४२, १३९, १०४	—१९	६२
९/१	१४६, १४२, १३९, १०३	१९-१८	६१
९/२	१४६, १४२, १३९, १०२	१८	६०

http://www.jainkosh.org

सब भाग इसमें ९ दिखाये हैं, सब भागोंमें १४६, १४२, १३९ के सत्ता वाले तक साधु पाये जा सकते हैं। किन्तु बंध व उदय इकहरा दिखाया जावे तो इसके भाग और भी हो सकते हैं तथा स्थितिकाण्डघात आदि अपेक्षायें लगाई जावें तो असंख्यात भाग हो जाते हैं।

अब आगे बंध व उदयका इकहरापन दिखानेके लिये द्वितीय नक्शा लिखते हैं। यह नक्शा क्षपकश्रेणी वालेकी मुख्यता से लिखते हैं, सो उससे शेष दो प्रकारके जीवोंका बंध उदय समान जानना और सत्त्वमें सब स्थानोमें १४६, १४२, १३९ भी समझ लेना—

(अगले पृष्ठपर बनी तालिका देखें)

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भाग	सत्त्व	बंध	उदय
१	१३८	२२	६६
२	१२२	२२	६६
३	११४	२२	६६
४	११३	२२	६५
५	११३	२२	६४
६	११३	२१	६४
७	११२	२१	६४
८	११२	२१	६३
९	१०६	२१	६३
१०	१०५	२१	६२
११	१०५	२०	६२
१२	१०४	२०	६२
१३	१०४	१९	६२
१४	१०३	१९	६२
१५/१	१०३	१८	६१
१५/१	१०२	१८	६०

इस नक्शे की संभालमें थोड़ा अन्तर रह गया हो तो पंडित जन इसे संभाल लेवें ।

इस अनिवृत्तिकरणके समयमें स्थिति कांडक पल्यके संख्यातवें भाग है जिनका कि घात होता है । नवीन स्थितिबंध पहिलेसे भी पल्यके संख्यातवें भागसे हीन है । अनुभागकाण्डक शेषके अनन्त बहुभाग प्रमाण है । अंनतगुणश्रेणीरूपसे शेष शेषमें गुणश्रेणीका निक्षेप है । इस ही प्रथमसमयमें अप्रशस्तप्रकृतियोंका उपशामनाकरण, निधत्तिकरण, निकाचितकरण ये तीन समाप्त हो जाते हैं । इसके पश्चात् उत्तरोत्तर प्रकृतिस्थितियां अनुभाग, बंधस्थिति हीन होती जाती हैं, निर्जरा असंख्यातगुणी होती है ।

जब अनेक स्थिति बंध सहस्र बीत जाते हैं तब वीर्यान्तरायका अनुभागबंध देशघाती हो जाता है । मोहनीयका स्थिति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भाग	बंध	उ०	सत्त्व
१	५	२	२१
२	५	२	१३
३	४	२	१३
४	४	२	१२
५	४	२	११
६	४	१	५
७	४	१	५
८	४	१	६
९	३	१	४
१०	३	१	३
११	२	१	३
१२	२	१	२
१३	१	१	२
१४	१	१	१

बंध शेष ६ कर्मोंसे भी थोड़ा होता है, उससे असंख्यातगुणा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका स्थितिबंध है । वेदनीयका स्थितिबंध कुछ अधिक है ।

क्षपक श्रेणीमें मोहनीय कर्मके बंध उदय सत्त्वके स्थानोके क्रमसे निम्न प्रकार से भाग होते हैं । इसका यह तात्पर्य है कि अनिवृत्तिकरण क्षपक साधुके पहिले ५ का बंध, २ का उदय, २१ का सत्त्व रहता है । बादमें ५ का बंध, २ का उदय, १३ का सत्त्व रहता है ।

बादमें ४ का बंध, २ का उदय, १३ का सत्त्व रहता है ।
बादमें ४ का बंध, २ का उदय, १२ का सत्त्व रहता है ।
बादमें ४ का बंध, २ का उदय, ११ का सत्त्व रहता है ।
बादमें ४ का बंध, १ का उदय, ११ का सत्त्व रहता है ।

बादमें ४ का बंध, १ का उदय, ५ का सत्त्व रहता है। बादमें ४ का बंध, १ का उदय, ४ का सत्व रहता है। इस प्रकार शेष आगेके हिस्सोंमें भी लगा लेना चाहिये।

इस स्थितिके पश्चात् संख्यात स्थितिबंध सहस्र बीत जाने पर अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, संज्वलन ४ इन बारह कषायोंका व ९ कषायोंका अन्तरकरण करता है, किन्तु यहांसे क्षपक इनका क्षपणा संबंधी कार्य—संक्रमण आदि करने लगता है। एक उपशामनामें हीन हीन होने वाले संख्यात स्थितिबंध सहस्र बीत जाते हैं।

उपशमश्रेणीमें प्रकृतियोंके उपशान्त होनेका क्रम इस प्रकार है—१–नपुंसक वेद। २–स्त्रीवेद। ३–हास्यादि छह व पुरुषवेद का बहुभाग। ४–पुरुषवेदके नवक समय प्रबद्ध। ५–अप्रत्याख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरणके क्रोधका संक्रमण करके संज्वलन क्रोध। ६–अप्रत्याख्यानावरण व प्रत्याख्याना-वरणके मानका संक्रमण करके संज्वलन मान। ७–अप्रत्या-ख्यानावरण प्रत्याख्यानावरणकी मायाका संक्रमण करके संज्व-लन वादर लोभ।

क्षपक श्रेणीमें प्रकृतियोंके क्षय होनेका क्रम इस प्रकार है—(१) स्त्यानगृद्धि आदि तीन व नरकगत्यादि तेरह, ये १६ प्रथमभागीय सत्त्वव्युच्छिन्न प्रकृतियाँ, (२) अप्रत्याख्यानावरण चार व प्रत्याख्यानावरण चार ये ८, (३) नपुंसकवेद, (४) स्त्रीवेद, (५) हास्यादि ६, (६) पुरुषवेद, (७) संज्वलन क्रोध, (८) संज्वलन मान, (९) संज्वलन माया व वादरलोभ स्पर्द्धक।

http://www.jainkosh.org

इस क्षपक अन्तरात्माके उक्त ३६ व क्षायिक सम्यक्त्वके समय नष्ट होने वाली ७ तथा तीन आयुका सत्त्व जन्मसे ही नहीं सो आयु ३ इस प्रकार ४६ प्रकृतियोंका सत्त्व नष्ट हो चुकता है।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें जीव संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होते हैं। इनके पर्याप्तियाँ ६, प्राण १०, संज्ञा २, मनुष्यगति, जाति पञ्चेन्द्रिय, त्रसकाय, योग ९, वेद ३ में से १ व अप-गतवेद, कषाय ७ में से २ व १, ज्ञान ४, संयम २, दर्शन ३, शुक्ललेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व २ (क्षा० द्वि०) में एक होते हैं।

अनिवृत्तिकरणवादरसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयत जीव, संज्ञी, आहारक क्रमशः २ उपयोग वाले, पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्ल-ध्यानके ध्याता होते हैं।

इस गुणस्थानमें आस्रव १९ में एकदा ३ व २, भाव २८ में एक जीवके २५, २४, २३ व २२ होते हैं।

इनके देहकी अवगाहना कमसे कम ३॥ हाथ व अधिकसे अधिक ५२५ धनुष तक की होती है।

इनका आवास ढाई द्वीपके भीतर ही है, क्षेत्र व स्पर्शन लोकका असंख्यातवां भाग है।

Version 1

इस गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त है, सातिशय अप्रमत्तसे आधा काल अपूर्वकरणका है और अपूर्वकरणसे आधा काल अनिवृत्तिकरणका है। इसमें उपशामक नाना व एक जीवका जघन्यकाल एक समय है, क्योंकि अनिवृत्तिकरणमें चढ़ने या उतरनेमें एक समयको आते ही मरण सम्भव है और तब चतुर्थ गुणस्थान हो जाता है, देवगतिमें जन्म लेते हैं। उपशामक जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। क्षपक अन्तरात्मावोंमें, नाना जीवोंमें भी जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है व उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है तथा एक जीवमें भी जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त है, उत्कृष्टकाल भी अन्तर्मुहूर्त है।

क्षपकश्रेणि वाले एक जीवका अन्तर नहीं होता, क्योंकि क्षपकश्रेणिसे चढ़कर वह अन्तमें गुणस्थानातीत हो जाता है, दूसरी बार उसी गुणस्थानमें नहीं आता। यही पद्धति सब क्षपक गुणस्थानोंकी है।

नाना जीवकी अपेक्षा अन्तर अर्थात् ऐसा काल जब कि इस गुणस्थानमें एक भी जीव न हो, कमसे कम एक समय होता है व अधिकसे अधिक छह माह होता है।

उपशामक नाना जीवोंका जघन्य अन्तर एक समयका होता है व उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वका होता है। एक जीव उपशामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है व उत्कृष्ट अंतर २६ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल तकका हो सकता है।

इसमें ११ अन्तर्मुहूर्त तो अन्तरसे पहिलेका है और १५ अंतर्मुहूर्त अन्तर समाप्त करनेके पश्चात्के हैं।

संज्वलन ४ कषायोंका कृष्टिकरण करके क्षय होता है, सो लोभकी अन्तिम बादरसाम्परायिक कृष्टियां सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें पूर्ण संक्रमण कर लेती हैं। वह नवमे गुणस्थानका अन्तिम समय है जिसमें पश्चात् दसवां गुणस्थान प्रकट होता है।

नवमे गुणस्थानके इस अन्तिम समयमें संज्वलन लोभका स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त व तीन घातिया कर्मोंका कुछ कम एक दिन प्रमाण तथा वेदनीयकर्म, नामकर्म, गोत्रकर्मका स्थितिबंध कुछ कम एक वर्षप्रमाण रह जाता है। इस समय जो कर्म बंधे हुए थे उनकी स्थिति इस प्रकार रह जाती है मोहनीयकी अन्तर्मुहूर्त, तीन घातिया कर्मोंका संख्यात हजार वर्ष तथा नामकर्म, गोत्रकर्म व वेदनीयकर्म इनका असंख्यात हजार वर्ष।

इस परिस्थितिके पश्चात् बादरसाम्पराय गुणस्थानका व्यय और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानका उत्पाद एक ही समयमें होता है। सभी गुणस्थानोंकी व सभी पर्यायोंकी यही पद्धति है कि पूर्वपर्यायका व्यय और उत्तरपर्यायका उत्पाद एक साथ होता है, अर्थात् पूर्वपर्यायका व्यय उत्तरपर्यायके उत्पादस्वरूप है और उत्तरपर्यायका उत्पाद पूर्वपर्यायके व्ययस्वरूप है। इस प्रकार अनिवृत्तिकरण बादरसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयत उपशामक व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

क्षपकका वर्णन करके अब सूक्ष्मसाम्परायका वर्णन करते हैं—

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान

जब केवल संज्वलन सूक्ष्म लोभ रह जाता है तब उसे सूक्ष्मसाम्पराय कहते हैं। उस सूक्ष्मलोभके नाशके लिये जो चारित्र होता है उसे सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र कहते हैं। इसी स्थानका नाम सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान है। इस गुणस्थानमें रहने वाले अन्तरात्माका नाम सूक्ष्मसाम्पराय प्रविष्टशुद्धिसंयत उपशमक या क्षपक है।

यह गुणस्थान प्रत्याख्यानावरणके क्षयोपशमके व संज्वलनसूक्ष्मवृक्कृष्टिगत लोभके उदयके निमित्तसे तथा सूक्ष्मसाम्परायचारित्रपरिणाम द्वारा होता है। इसमें निमित्त चारित्रमोह है अर्थात् चारित्रमोहका क्षयोपशम है या चारित्र मोहका उपशम है या चारित्रमोहका क्षय है। इसमें भाव सरागचारित्र होनेसे क्षायोपशमिक है, किन्तु अवशिष्ट मोहके भी क्षयका यत्न है व अन्तमें अवशिष्ट सूक्ष्म लोभका क्षय कर देता है, अतः क्षायिक भाव है। उपशम श्रेणिमें चढ़े हुए अन्तरात्माके सूक्ष्म लोभके उपशमका यत्न है व अन्तमें सूक्ष्म लोभका भी उपशम कर देता, अतः औपशमिक भाव है।

इस गुणस्थानमें प्रतिसमय अपूर्व परिणाम होते हैं, समान समयवर्तियोंके समान परिणाम होते हैं और सूक्ष्म साम्परायचारित्रकी विशेषता रहती है।

की ५, अंतरायकी ५, चक्षुर्दर्शनावरणादि ४, यशःकीर्ति, उच्च गोत्र, सातावेदनीय इन सत्रह प्रकृतियोंका बंध होता है।

इस गुणस्थानवर्ती जीवके उदय ६० प्रकृतियोंका है, वादरसाम्परायान्त उदयव्युच्छिन्न ५+९+१×१७+८+५+४+६+६×५१ तथा तीर्थंकरप्रकृति इन ६२ प्रकृतियोंका उदय नहीं है।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीवके सत्त्व १४६, १४२, १३९ या १०२ का सत्त्व है। इस गुणस्थानमें साधु ३ प्रकार के हैं—१. द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमक, २. क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशमक, ३. क्षायिकसम्यग्दृष्टि क्षपक द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमक भी दो प्रकार हैं–१. अनंतानुबंधीके उपशामक, २. अनन्तानुबन्धीके विसंयोजक। अनोपशमक द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमकके १४६ का सत्त्व है, तिर्यंगायु व नरकायुका सत्त्व नहीं है। अनविसंयोजक द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमक के १४२ का सत्त्व है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशमकके १३९ का सत्त्व है। इसके सम्यक्त्वबाधक ७ प्रकृति तथा तिर्यगायु व नरकायु इन ९ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि क्षपकके नवम गुणस्थानव्युच्छिन्न ३६ प्रकृतियां तथा तिर्यंगायु, नरकायु, देवायु व सम्यक्त्वबाधक ७ प्रकृतियां इन ४६ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं होनेसे १०२ प्रकृतियोंका सत्त्व है।

सूक्ष्मसाम्परायसंयत संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होता है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसके पर्याप्तियां ६, प्राण १०, संज्ञा ४, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय-जाति, त्रसकाय, योग ६, अपगतवेद, कषाय १ संज्वलनसूक्ष्म-लोभ, ज्ञान ४, सूक्ष्मसाम्परायसंयम, दर्शन ३, शुक्ललेश्या, भव्यत्व, क्षायिम सम्यक्त्व या द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होते हैं।

सूक्ष्मसाम्परायसंयत संज्ञी, आहारक क्रमशः दोनों उपयोग वाले, पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानके ध्याता होते हैं। इस गुणस्थानमें आस्रव २ होते हैं, भाव २२ होते हैं, एक जीवके २१-२०-१९-१८ होते हैं।

सूक्ष्मसाम्पराय संयतोंके देहकी अवगाहना कमसे कम ३॥ हाथ व अधिकसे अधिक ५२५ धनुषकी होती है।

इनका आवास ढाई द्वीपके भीतर ही है। क्षेत्र व स्पर्शन लोकका असंख्यातवां भाग है।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानका काल उपशमक नाना जीवोंकी अपेक्षा कमसे कम एक समय व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। एक जीव उपशमकका भी जघन्यकाल एक समय व उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। क्षपक नाना जीवोंका व एक जीवका भी जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त है व उत्कृष्टकाल भी अन्तर्मुहूर्त है।

सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक एक जीवका अन्तर नहीं होता। नाना क्षपकोंको अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय व उत्कृष्ट अंतर ६ माहका होता है। उपशमक नाना जीवोंमें जघन्य अन्तर एक समय व उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। उपशमक

एक जीवका जघन्य अंतर तो अंतर्मुहूर्तका होता है और उत्कृष्ट अन्तर २४ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन हो सकता है। इसमें १० अन्तर्मुहूर्त अन्तर करणसे पहिलेके हैं व १४ अंत-र्मुहूर्त अन्तर समाप्तिके पश्चात् शेष संसारके हैं।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन तीन घातिया कर्मोंका स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त ही होता है। मोहनीयका बन्ध सूक्ष्मसाम्परायमें पहिले समयसे ही नहीं है। नाम व गोत्रकर्मका स्थितिबंध १६ अन्तर्मुहूर्त रह जाता है। वेदनीयकर्मका स्थितिबंध २४ मुहूर्त ही होता है। इसके पश्चात् संज्वलन सूक्ष्मलोभका अभाव हो जाता है। उपशमश्रेणी वाले अन्तरात्माके उसका उपशम होता है। क्षपकश्रेणी वालेके क्षयरूप अभाव होता है।

उपशमकका दसवें गुणस्थानसे ९वें या ११वें गुणस्थानमें व अनन्तर मरण हो जाये तो चौथे गुणस्थानमें जाना होता है तथा दसवेंमें आना ९वें या ११वें में से होता है।

क्षपक दसवें गुणस्थानसे १२वें गुणस्थानमें जाता है और नवमे गुणस्थानसे दसवेंमें आता है।

इस प्रकार सूक्ष्मसाम्परायप्रविष्टशुद्धिसंयत उपशमक व क्षपकको बताकर उपशान्तकषाय गुणस्थानको कहते हैं—

उपशान्तकषाय गुणस्थान

जिनके समस्त कषायें उपशांत हो चुकी हैं उन्हें उपशांत-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कषाय कहते हैं। दर्शनमोह ३ अनन्तानुबंधी ४ का उपशम तो श्रेणी चढ़नेसे ही पहिले हो गया था, शेषका ९वें १०वें में हो गया, इस प्रकार इनके समस्त मोहनीय कर्मका उपशम रहता है। इस गुणस्थानवर्ती जीवका नाम उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ है। ये जीव उपशान्तकषाय हैं, वीतराग हैं और छद्म कहिये ज्ञानावरण और दर्शनावरण इनमें स्थित हैं अर्थात् सर्वज्ञ और सर्वदर्शी नहीं है।

इस गुणस्थानसे पहिलेके सब गुणस्थान सराग छद्मस्थ कहलाते हैं। क्योंकि पूर्वोक्त सब गुणस्थान कषायके उदय करि सहित हैं और असर्वज्ञ व असर्वदर्शी हैं।

उपशान्तकषाय गुणस्थानमें परिणाम कषायरहित होनेसे पूर्ण निर्मल हैं, परन्तु कषायोंका उपशम करके ये परिणाम पाये हैं। अतः उपशमका काल समाप्त होते ही नीचे दसवें गुणस्थानमें गिरना पड़ता है और दसवेंसे भी ९वें में गिरता है, इस परम्परासे ७वें ६वें तक तो गिरना ही पड़ता है। आगे साधारण व्यवस्था है, चढ़ भी सकता व गिर भी सकता।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमक गिरता हो रहे तो चौथे गुण-स्थान तक ही गिर सकता है, यह फिर क्षपकश्रेणी चढ़कर निर्वाण प्राप्त कर सकता है। यदि क्षपकश्रेणी न चढ़े और मरण करे तब देवगतिमें ही उत्पन्न होगा।

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें यदि मरण हो तो वह भी देवगति

http://www.jainkosh.org

में ही उत्पन्न होगा। द्वितीयोपशम सम्यक्त्वके बाद या तो वेदकसम्यक्त्व पाकर चौथे पांचवें सातवेंमें आ सकता है या मिथ्यादृष्टि हो सकता है। किन्हीं आचार्योंके ध्यानसे वह सासादन गुणस्थानमें भी जा सकता है।

द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि ११वें से क्रम क्रमसे गिरकर सातवें छठवें गुणस्थानमें पहुंचते हैं। वहाँ यदि संभल जावे तो क्षयोपशमसम्यक्त्व पाकर पश्चात् क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर लेते हैं और क्षपकश्रेणी चढ़कर अंतमें मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

उपशान्त कषाय गुणस्थानके कालके बीचमें ही आयुका क्षय हो जावे तो चौथे गुणस्थानमें गिरना पड़ता है।

उपशान्त कषाय गुणस्थानमें आना केवल सूक्ष्मसाम्पराय उपशमकसे ही होता है। इस गुणस्थानसे जाना भी दसवें गुणस्थानमें होता है, किन्तु मरणकी अपेक्षासे चौथे गुणस्थानमें जाना होता है।

यह गुणस्थान चारित्रमोहके उपशमसे हुआ है, अतः इसमें औपशमिक भाव है और निमित्त मोहका है अर्थात् मोहका उपशम है।

उपशान्त कषाय गुणस्थानसे गिरनेपर जैसे-जैसे कार्योंसे बढ़ा था वैसे-वैसे अब हीन परिणाम होता चला जावेगा और स्थितिबन्ध आदि जिस जगह जितना होता था प्रायः वैसा ही उस स्थानमें होता चला जावेगा अर्थात् बंध आदि बढ़ता चला

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जावेगा। उपशान्तकषाय गुणस्थानमें जीवसमास एक, सैनी-पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, पर्याप्तियां ६, प्राण १०, अपगतसंज्ञता, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, योग ६ में एकदा एक, अपगतवेदत्व, अकषायत्व, ज्ञान ४-३-२ में उपयोगसे एक, यथाख्यातचारित्र, दर्शन ३-२ में उपयोगसे एक, शुक्ललेश्या उपचारसे, भव्यत्व, क्षायिकसम्यक्त्व द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमें एक, संज्ञित्व आहारक होते हैं।

उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ अन्तरात्मा क्रमशः दोनों उपयोग वाले, पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानके ध्याता होते हैं।

इस गुणस्थानमें आस्रव ६ योग, किन्तु एकदा एक, भाव २१ में २०-१९-१८-१७ होते हैं।

इनके देहकी अवगाहना कमसे कम ३॥ हाथ व अधिकसे अधिक ५२५ धनुष तककी होती है।

इनका आवास ढाई द्वीपके भीतर है। क्षेत्र स्पर्शन लोक का असंख्यातवां भाग है।

उपशान्तकषाय गुणस्थानका समय जघन्यसे एक समय है व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती जीव इस गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानोंमें जाय और पुनः आगे इसी गुणस्थानमें पहुंचे तो इस बीचका अन्तर अर्थात् जितने समय कोई जीव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

इस गुणस्थानमें न मिले वह अन्तर जघन्य तो एक समय है और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व है। एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्य तो अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट २२ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल है। इसमें ९ अन्तर्मुहूर्त तो अन्तरसे पहिले इस गुणस्थानको शीघ्र प्राप्त करनेमें लगे थे और उत्कृष्ट अन्तर करनेके पश्चात् जब वह उस गुणस्थानको प्राप्त कर लेता है तब निर्वाण पानेमें १३ अंतमुहूर्त और लगते हैं, सो इन २२ अंतर्मुहूर्तोंसे कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल उत्कृष्ट अंतर होता है।

इस गुणस्थानमें बंध केवल सातावेदनीयका है। उसकी स्थिति कषाय न होनेके कारण एक समयकी है अर्थात् उसका आस्रवमात्र है, ईर्यापथ आस्रव है।

इस गुणस्थानमें उदय ५९ प्रकृतियोंका है, सरागव्युच्छिन्न ६२ व तीर्थङ्कर प्रकृति इन ६३ का उदय नहीं है।

इस गुणस्थानमें सत्त्व १४६, १४२ व १३९ का है, क्योंकि इसमें अनोपशामक द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमक अनविसंयोजक द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशमक व क्षायिक-सम्यग्दृष्टि उपशमक जीव होते हैं। क्षायिकसम्यग्दृष्टि क्षपक नहीं होते हैं। ये दसवें तक ही थे और वे वहांसे १२वें गुणस्थानमें पहुंचते हैं।

इस प्रकार उपशान्तकषाय गुणस्थानका वर्णन करके अब क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थानका वर्णन करते हैं—

क्षीणकषाय

जहाँ समस्त कषायोंका क्षय हो चुका है उन निर्मल परिणामोंको क्षीणकषाय गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थानवर्ती जीवका नाम क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ है। कषायोंका क्षय दसवें क्षपक गुणस्थानके अंतमें हो चुका था। अतः यह क्षीण-कषाय है, रागद्वेषादि भावोंसे पृथक् है, अत्यन्त निर्मल है, किन्तु ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मका क्षय न होनेसे छद्मस्थ है, अभी सर्वज्ञ व सर्वदर्शी नहीं है।

इस गुणस्थानसे पहिलेके सभी अर्थात् ग्यारहों गुणस्थान-वर्ती जीव छद्मस्थ हैं।

यह गुणस्थान चारित्रमोहके क्षयसे प्रकट हुआ है, अतः इसमें क्षायिक भाव है व निमित्त मोहका है अर्थात् मोहका क्षय है।

इस गुणस्थानमें बंध केवल सातावेदनीयका है, इसकी स्थिति एक समयकी है अर्थात् इसके ईर्यापथ आस्रव है।

इस गुणस्थानमें उदय ५७ प्रकृतियोंका है, क्योंकि सराग-व्युच्छिन्न ६२ प्रकृति व बज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन और तीर्थङ्कर प्रकृति इन ६५ प्रकृतियोंका उदय नहीं है तथा अन्त समयमें ५५ प्रकृतियोंका उदय है, क्योंकि इस गुणस्थानमें उपान्त्य समयमें निद्रा व प्रचलाकी भी उदयव्युच्छित्ति हो जाती है।

http://www.jainkosh.org

इस गुणस्थानमें सत्त्व १०१ प्रकृतियोंका है, क्योंकि अनिवृत्तिकरणव्युच्छिन्न ६६ प्रकृति व सूक्ष्मसाम्परायव्युच्छिन्न संज्वलन लोभ व नरकायु, तिर्यगायु, देवायु एवं सम्यक्त्वबाधक ७ प्रकृति इन ४७ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है तथा अन्तिम समयमें ९९ प्रकृतियोंका सत्त्व है, क्योंकि उपान्त्य समयमें निद्रा व प्रचलाकी व्युच्छित्ति हो जाती है।

क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ उत्कृष्टोत्कृष्ट अन्तरात्मा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इनका स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्त कर देता है। इसके कर्मोंका स्थितिबंध व अनुभागबंध नहीं है, केवल एक समयस्थितिक ईर्यापथ आस्रव केवल साता-वेदनीय प्रकृतिका है।

इस गुणस्थानमें संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त ही होते हैं। इनके पर्याप्तियाँ ६, प्राण १०, अपगतसंज्ञत्व, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, योग ९ में एकदा एक, अपगतवेदत्व, अकषा-यत्व, ज्ञान ४-३-२ में उपयोगसे एक यथाख्यातचारित्र, दर्शन ३-२ में उपयोगसे एक, उपचारसे शुक्ललेश्या, भव्यत्व, क्षायिक सम्यक्त्व होते हैं।

क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती जीव संज्ञी, आहारक क्रमशः दोनों उपयोग वाले होते हैं।

इनके प्रवेशके समयसे कुछ समय तक तो पृथक्त्ववितर्क-वीचार शुक्लध्यान होता है। पश्चात् एकत्ववितर्क अवीचार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शुक्लध्यान होता है और अंत तक यही एक द्वितीय शुक्लध्यान रहता है। एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानमें ये जिस योग व जिस जल्पसे जिस अर्थका ज्ञान करते हैं उसी प्रकार ध्यान रहता है। उसके समाप्त होते ही केवलज्ञान उत्पन्न होता है। भावमन भी नष्ट हो जाता है।

इस गुणस्थानमें होने वाले अन्तरात्मावोंका आवास ढाई द्वीपके अन्दर है। क्षेत्र व स्पर्शन लोकका असंख्यातवां भाग है।

क्षीणकषाय गुणस्थानका जघन्य व उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इस गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा तो अन्तर है नहीं, क्योंकि इस गुणस्थानके पश्चात् वह जीव १३वां व पुनः १४वां गुणस्थान पाकर नियमसे निर्वाणको प्राप्त होगा, पुनः इस गुणस्थानमें आना संभव ही नहीं, किन्तु नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर है अर्थात् ऐसा लगातार कुछ समय होता है जब कि एक भी जीव क्षीणकषाय गुणस्थानमें नहीं है। वह अन्तर काल जघन्यसे तो एक समय है और अधिकसे अधिक ६ माह है।

क्षीणकषाय गुणस्थानके अन्तिम समयमें यह कृतकरणीय कहलाने लगता है और उस समय ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण शेषके ४ व अन्तराय ५ इनके उदयकी व सत्त्वकी एक साथ व्युच्छित्ति कर देता है।

इस प्रकार क्षीणकषाय गुणस्थानका कुछ वर्णन करके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अब सयोगकेवली गुणस्थानकी महिमा प्रकट करते हैं—

सयोगकेवली

चारों घातिया कर्मोंके क्षय होते ही वे अन्तरात्मा केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तसुख एवं अनन्तशक्ति इस शिवचतुष्टय से संपन्न जिनेन्द्र, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अरहंत, सकलपरमात्मा, सगुणब्रह्म आदि नामोंसे संज्ञित ईश्वर हो जाते हैं। इनके जब तक योग रहता है तब तक सयोगकेवली कहलाते हैं। इस गुणस्थानसे पहिलेके सभी गुणस्थानवर्ती सयोगी हैं, किन्तु छद्मस्थ हैं।

भव्य जीवोंके भाग्यके निमित्तसे इनका विहार होता रहता है। ये इस पृथ्वीतलसे ५००० धनुष ऊपर रहते हैं।

ये औपचारिक कारणोंसे २ प्रकारके होते हैं—१. तीर्थंकरकेवली, २. सामान्यकेवली। तीर्थङ्करकेवलीके समवशरण होता है, सामान्यकेवलीके गन्धकुटीकी रचना होती है। यह सब रचना इन्द्रकी आज्ञासे कुबेर ऋद्धिकी विशेषतासे अंतर्मुहूर्त में कर देता है।

सयोगकेवली भगवानकी दिव्यध्वनि द्वारा भव्य जीवोंको उपदेश प्राप्त होता है। ये मूल ग्रन्थकर्ता कहलाते हैं। इनकी दिव्यध्वनि निरक्षरी अर्थात् अक्षररहित या सर्व अक्षरसहित होती है। जिसके निमित्तसे जीव अपनी योग्यतानुसार तत्त्व प्राप्त करते हैं। गणधर देव द्वादशांगकी रचना करते हैं, गण-

घर देव चार ज्ञानके धारी हैं, सो उनकी कृति अवश्य प्रमाण-भूत है, साथ ही वह कृति सर्वज्ञदेवकी दिव्यध्वनिके निमित्तसे हुई है, प्रमाणिकताकी अमोघ पूर्ति सिद्ध है।

जिनेन्द्रदेवका ज्ञान केवलज्ञान है, अन्य निमित्तोंकी इन्द्रियादिकी सहायतासे रहित आत्मीय अनन्तशक्तिसे प्रकट हुआ पूर्ण ज्ञान है।

जिनेन्द्रदेवके जन्म, जरा, तृषा, क्षुधा, विस्मय, आर्ति, खेद, रोग, शोक, मद, मोह, भय, निद्रा, चिंता, स्वेद, राग, द्वेष और मरण ये अठारह दोष नहीं होते हैं। आयुका अन्त होने पर इनका निर्वाण होगा। सयोगकेवली होते ही इनका औदारिक शरीर परमौदारिक हो जाता है—धातुदोषरहित पुष्ट शरीर हो जाता है। इनके नख और केश नहीं बढ़ते हैं, ये कवलाहार नहीं करते हैं। इन्हें स्नातकनामक निर्ग्रन्थ भी कहते हैं।

सयोगकेवलीके केवल सातावेदनीयका ईर्यापथ आस्रव होता है। उदय सातावेदनीयका रहता है, असातावेदनीयका भी सत्त्व हो तो वह उदयमें सातारूप परिणम जाता है, किन्तु भगवानको सुख सातावेदनीयके उदयके निमित्तसे नहीं है। उनका सुख आत्मीय सहज शाश्वत अनन्त है। वेदनीयके अतिरिक्त ४१ प्रकृतियोंका भी उदय रहता है, छद्मस्थान्त उदय व्युच्छिन्न ८० प्रकृतियोंका उदय नहीं है। तीर्थङ्करप्रकृतिका इस गुणस्थानमें उदय होता है। जिन अन्तरात्मावोंने तीर्थङ्कर

प्रकृतिका बंध नहीं किया था उनके तीर्थङ्कर प्रकृतिका उदय नहीं होता। परमात्माके तीर्थङ्कर प्रकृतिका उदय हो या न हो इससे उनके स्वरूपमें सुखमें माहात्म्यमें कोई अन्तर नहीं आता। जिन्होंने तीर्थंकर प्रकृतिका बंध नहीं किया, उनके इस गुणस्थानमें व अन्य सभी गुणस्थानोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिका सत्त्व नहीं होता।

सयोगकेवली, तीर्थङ्करकेवली, सामान्यकेवली, मूककेवली, अन्तकृत्केवली, समुद्घातकेवली, उपसर्गसिद्धकेवली आदि अनेक प्रकार हैं, परन्तु इन प्रकारोंसे उनके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं आता।

सयोगकेवली, जिनेन्द्रके ८५ प्रकृतियोंकी सत्ता है। इनके अनिवृत्तिकरणव्युच्छिन्न ३६, सूक्ष्मसाम्परायव्युच्छिन्न १, क्षीणकषायव्युच्छिन्न १६ तथा नरकायु, तिर्यगायु, देवायु एवं अनन्तानुबंधी ४ व दर्शनमोहकी ३ इन ६३ प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है। इस गुणस्थानमें जीवसमास सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त हैं। ये जीव सैनी नहीं रहे, ये सैनी असैनीपनसे रहित हैं, फिर भी द्रव्येन्द्रिय पांचों होने तथा पर्याप्त होनेसे यह जीवसमास कहा गया है। पर्याप्तियां ६, प्राणवचनबल, कायबल, आयु व उच्छ्वास ये ४, बादरयोगका निरोध होनेपर कायबल और आयु ये २ प्राण होते हैं।

सयोगकेवली जिनेन्द्रके अपगतसंज्ञत्व, मनुष्यगति, पञ्चे-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न्द्रियजाति, त्रसकाय, योग ४-३-२ में एकदा एक, अपगत-वेदत्व, अकषायत्व, ज्ञान केवलज्ञान, यथाख्यातचारित्र केवल-दर्शन, उपचारसे शुक्ललेश्या, भव्यत्व, क्षायिकसम्यक्त्व, संज्ञित्व, आहारक, युगपत् दोनों उपयोग, अन्तमें सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपाती शुक्लध्यान, ईर्यापथआस्रव १, भाव १४ होते हैं।

सयोगकेवलीका आवास ढाई द्वीपके भीतर है। क्षेत्र व स्पर्शन लोकका असंख्यातवां भाग, लोकके असंख्यात बहुभाग व सर्वलोक है। इतना बड़ा क्षेत्र होनेका हेतु समुद्घात है, जिसका वर्णन आगे करेंगे।

सयोगकेवली गुणस्थानका काल नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल है, इसीलिये इनका अन्तरकाल भी नहीं है अर्थात् ऐसा समय न हुआ, न होगा जबकि सयोगकेवली कोई न हो अर्थात् सयोगकेवली सदा होते हैं। एक जीवकी अपेक्षा भी सयोगकेवलीका अंतर नहीं है। क्योंकि वह निर्वाण ही पावेगा, सयोगकेवली पुनः बनना असम्भव है। एक जीवकी अपेक्षा काल जघन्य तो अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल गर्भदिन व ८ वर्ष व ८ अन्तर्मुहूर्त कम १ करोड़ पूर्व वर्ष प्रमाण है।

इन्द्र अनेक शोभाओं सहित अन्य रचनावोंके अतिरिक्त ८ प्रतिहार्योंको स्वयं नियुक्त कर अपनेको धन्य समझता है। वे आठ प्रतिहार्य ये हैं—अशोकवृक्ष, सिंहासन, तीनछत्र, भामंडल, दिव्यध्वनिका प्रसार, पुष्पवृष्टि, ६४ यक्षों द्वारा ६४ चमरोंका

ढुलना, दुंदुभिनाद।

जहाँ प्रभु होते हैं वहाँ चारों तरफ १००-१०० योजन तक दुर्भिक्ष पीड़ा रोग नहीं रहता व क्षेमकी वृद्धि हो जाती है। प्रभुका गमन आकाशमें ही ऊपर होता है। इनमें रागद्वेष का अत्यन्त अभाव है। इनपर कोई उपसर्ग नहीं कर सकता, इनके कवलाहार नहीं है। आहारवर्गणाके परमाणु शरीरमें आते रहते हैं, अतः नोकर्माहार ही है। समस्त विद्यावोंके ईश्वर ये प्रभु हैं।

इनके नख और केश नहीं बढ़ते हैं। इनके आँखकी पलक बंद नहीं होती हैं, किन्तु सौम्यदृष्टिको लिये हुए पलक स्थिर रहते हैं।

इनके उपदेश, दर्शन, विहारसे अनेक भव्य जीवोंको आत्मलाभ होता है। ये मोक्षमार्गके नेता कहे जाते हैं। आयुके अन्तके कुछ दिन शेष रह जानेपर इनका विहार व उपदेश बंद हो जाता है।

सयोगकेवलीकी आयु जब अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाती है तब जो जो स्थितियां होती हैं, उनका वर्णन क्रमशः करते हैं। इस अन्तर्मुहूर्तमें कई अन्तर्मुहूर्त गर्भित हैं।

१—सयोगकेवली ८ समयमें केवलिसमुद्घात करते हैं। आयुकर्मकी स्थिति तो कम हो व शेष तीन अघातिया कर्मोंकी स्थिति अधिक हो तो अघातिया कर्मोंकी स्थिति आयुके समान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

करनेके लिये यह केवलिसमुद्घात होता है। मूल शरीरको न छोड़कर आत्मप्रदेशोंके शरीरसे बाहर फैल जानेको समुद्घात कहते हैं व केवलीके समुद्घातको केवलिसमुद्घात कहते हैं। प्रथम समयमें दण्डसमुद्घात कहते हैं, इसमें सयोगकेवलीके आत्मप्रदेश कुछ कम १४ राजू नीचेसे ऊपर दंडाकार फैल जाते हैं, सो यदि केवली भगवान पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख कायोत्सर्गासनसे हों तो शरीर प्रमाण बाहल्य (घेर) लेकर आत्मप्रदेश कुछ कम १४ राजू नीचेसे ऊंचे फैल जावेंगे और यदि भगवान पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख पद्मासनसे हों तो शरीरप्रमाणसे तिगुने बाहल्यको लेकर कुछ कम १४ राजू प्रमाण फैल जावेंगे, यह सब एक समयमें हो जाता है।

इस समयमें आयुको छोड़कर तीन अघातिया कर्मोंकी स्थितिके असंख्यात बहुभाग नष्ट हो जाते हैं और अवशिष्ट अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनन्त बहुभाग नष्ट हो जाते हैं।

कपाट समुद्घातमें आत्मप्रदेश लम्बाईमें तो समुद्घातकी तरह रहेंगे, किन्तु चौड़ाईमें यदि पूर्वाभिमुख केवली हैं तो दक्षिण उत्तर दिशामें उतने बाहल्य (मोटाई) लिये हुए सर्वत्र ७-७ राजू प्रमाण वातवलयको छोड़कर फैल जाते हैं। यदि केवली उत्तराभिमुख हों तो दण्ड समुद्घातके बाहुल्यको लेकर पूर्व पश्चिममें वातवलयको छोड़कर जहाँ जितना व्यास है उतने प्रमाण फैल जाते हैं। इसमें भी एक समय लगता है। इस

कपाट समुद्घातमें औदारिक मिश्रकाययोग होता है। इस समय में तीन अघातियोंकी अवशिष्ट स्थितिके असंख्यात बहुभाग नष्ट हो जाते हैं, अप्रशस्त प्रकृतियोंके अवशिष्ट अनुभागके अनन्त बहुभाग नष्ट हो जाते हैं।

इसके अनन्तर प्रतरसमुद्घात होता है। इसमें आत्मप्रदेश वातवलयोंको छोड़कर सर्वत्र लोकमें फैल जाते हैं। इसका दूसरा नाम मंथसमुद्घात भी है। फैलनेकी मुख्यतासे प्रतरनाम है और अघातिया कर्मोंके मंथनकी मुख्यतासे मंथ नाम पड़ा है। इसमें भी एक समय लगता है। इस समयमें तीन अघातियोंकी अवशिष्ट स्थितिके भी असंख्यात बहुभाग नष्ट हो जाते हैं और अप्रशस्त प्रकृतियोंके अवशिष्ट अनुभागके अनन्त बहुभाग नष्ट हो जाते हैं, इसमें कार्माणकाययोग होता है।

इसके अन्तर लोकपूरणसमुद्घात होता है, इसमें योगकी एक वर्गणा हो जाती है अर्थात् लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक-एक आत्मप्रदेश हो जाता है। वातवलयोंमें आत्मप्रदेश इस समुद्घातमें पहुंचते हैं। इसमें एक समय रहता है। इस समयमें तीन अघातियोंकी अवशिष्ट स्थितिके असंख्यात बहुभाग नष्ट हो जाते हैं। यहाँ भी कार्माणकाययोग रहता है। इस समय तीनों अघातिया कर्मोंकी स्थिति आयुसे मात्र संख्यात गुणे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण रह जाती है।

इसके पश्चात् आत्मप्रदेशोंका क्रमशः प्रतरसमुद्घात, दण्ड-

समुद्घात व मूलशरीरप्रवेश होता है। उतरते समयके समुद्घातोंमें तीन अघातियोंकी अवशिष्ट स्थितिके संख्यात बहुभाग नष्ट हो जाते हैं, शेष अनुभागके अनंत बहुभाग नष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार केवलिसमुद्घातमें ८ समय लग जाते हैं— १. दण्डसमुद्घातमें, २. कपाटसमुद्घातमें, ३. प्रतरसमुद्घातमें, ४. लोकपूरणसमुद्घातमें, ५. प्रतरसमुद्घातमें, ६. कपाटसमुद्घातमें, ७. दण्डसमुद्घातमें, ८. मूलशरीरप्रवेशमें। इस केवलिसमुद्घात द्वारा तीन अघातिया कर्मोंकी स्थिति प्रायः समान हो जाती है, अल्प ही अन्तर रह जाता है।

२—इसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाकर वादरकाययोग द्वारा वादरमनोयोगका निरोध हो जाता है। जिन केवलियोंके समुद्घात नहीं होता है उनके भी इतना ही समय सयोगकेवलिगुणस्थानका शेष रहनेपर योगनिरोधकी इस क्रियाका प्रारम्भ हो जाता है।

३—अन्तर्मुहूर्त पश्चात् वादरकाययोग द्वारा वादर वचनयोगका निरोध हो जाता है।

४—अन्तर्मुहूर्त पश्चात् वादरकाययोग द्वारा वादर श्वासोच्छ्वासका निरोध हो जाता है।

५—अन्तर्मुहूर्त पश्चात् वादरकाययोगसे वादरकाययोगका निरोध हो जाता है। जैसे काठ चीरने वाला उसी काठपर खड़े होकर काठ चीरता है अथवा सूक्ष्मकाययोग द्वारा वादरकाययोगका निरोध करता है।

६—अन्तर्मुहूर्त पश्चात् सूक्ष्मकाययोगसे सूक्ष्ममनोयोगका निरोध करता है।

७—अन्तर्मुहूर्त पश्चात् सूक्ष्मकाययोगसे सूक्ष्मवचनयोगका निरोध करता है।

८—अन्तर्मुहूर्त पश्चात् सूक्ष्मकाययोगसे सूक्ष्म श्वासोच्छ्वासका निरोध करता है।

९—अन्तर्मुहूर्त पश्चात् सूक्ष्मकाययोगसे सूक्ष्मकाययोगका निरोध करता है।

इस अन्तर्मुहूर्त अपकर्षण द्वारा पूर्वस्पर्द्धकसे अपूर्वस्पर्द्धक, पुनः कृष्टियोंको असंख्यातगुणित श्रेणीसे करता है। कृष्टिकरण समाप्त होनेपर पूर्वस्पर्द्धक और अपूर्वस्पर्द्धक नष्ट हो जाते हैं, पश्चात् कृष्टिगतयोग वाला होता है। कृष्टिगतयोगके समय सयोगकेवली भगवानके सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान होता है, जिससे कृष्टियोंके असंख्यात बहुभाग नष्ट होते हैं और अन्तमें योगका निरोध हो जाता है। इस समयमें नामकर्म, गोत्रकर्म व वेदनीय ये तीनों अघातिया आयुकर्मके समान हो जाते हैं। यह समय सयोगकेवलीका अन्तिम समय है। अन्तिम समयमें योगका पूर्ण सर्वथा निरोध, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यानका व्युच्छेद व तीनों अघातिया कर्मोंका आयुकर्मके पूर्ण समान हो जाना, ये तीनों बातें एक साथ होती हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

यह गुणस्थान समस्त मोहके क्षयके पश्चात् होने वाले शेष तीन घातिया कर्मोंके क्षयसे प्रकट होता है। अतः इसमें भाव क्षायिक भाव है, परंतु नाम पड़नेमें निमित्तयोग है अर्थात् यहाँ वीतराग सर्वज्ञ होते हुए भी जहाँ तक योगका सद्भाव रहता वहाँ तक सयोगकेवली कहलाते हैं

इस प्रकार सयोगकेवलीका निरूपण करके अब अयोग-केवली गुणस्थानके सम्बंधमें कहते हैं—

अयोगकेवली

योगके नष्ट होते ही ये केवलज्ञानी सकलपरमात्मा अयोगकेवली कहलाते हैं। शरीरके क्षेत्रमें रहते हुए भी इनके प्रदेशोंका शरीरसे वह सम्बन्ध नहीं रहता, क्योंकि अङ्गोपाङ्ग-नामकर्मके उदयका विनाश सयोगकेवली गुणस्थानके अन्तमें हो जाता है।

समस्त घातिया कर्मोंके क्षय हो जानेसे तथा अति शीघ्र ही अघातिया कर्मोंके नाश करने वाले होनेसे इनके क्षायिक भाव होता है, किन्तु इस गुणस्थानके नाम होनेका निमित्त योग है अर्थात् योगका अभाव है।

अयोगकेवली गुणस्थानमें ईर्यापथ आस्रव भी नहीं होता है। उदय १२ प्रकृतियोंका है—१. वेदनीयकी एक, २. मनुष्य-गति, ३. पञ्चेन्द्रियजाति, ४. सुभग, ५. त्रस, ६. बादर, ७. प्रत्येक, ८. आदेय, ९. यशःकीर्ति, १०. तीर्थंकरप्रकृति,

http://www.jainkosh.org

११. मनुष्यायु, १२. उच्चगोत्र। जिनके तीर्थङ्करप्रकृतिका बंध नहीं था उनके ११ प्रकृतिका ही उदय रहता है।

इस गुणस्थानमें सत्त्व ८५ प्रकृतियोंका ही होता है और जिनने तीर्थंकरप्रकृतिका बंध नहीं किया था उनके ८४ प्रकृतियोंका ही सत्त्व रहता है एवं जिन्होंने आहारकद्विक व तीर्थंकर प्रकृति इन तीनोंका बंध नहीं किया था उनके ८२ प्रकृतियोंका ही सत्त्व रहता है और जिन्होंने आहारकद्विकका ही बंध नहीं किया था उनके ८३ प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है, किन्तु अन्तिम समयमें तीर्थङ्करप्रकृतिबंध वालोंके १३ व शेषके १२ प्रकृतियोंका सत्त्व रहता है जिसके व्युच्छेदके पश्चात् वे सिद्ध परमेष्ठी हो जाते हैं। उक्त ८५ प्रकृतियोंमें ७२ का तो अयोग-केवली गुणस्थानके उपान्त्य समयमें नाश होता है और अव-शिष्ट १३ प्रकृतियोंका अयोगकेवलीके अन्त समयमें क्षय होता है। वे प्रकृतियाँ इस प्रकार है—

उपान्त्यसमयव्युच्छिन्न ७२ प्रकृतियां—शरीर ५, बंधन ५, संघात ५, संस्थान ६, संहनन ६, अङ्गोपाङ्ग ३, स्पर्श ८, रस ५, गंध २, वर्ण ५, स्थिर १, शुभ १, सुस्वर १, देवगति १, विहायोगति २, अस्थिर १, अशुभ १, दुःस्वर १, देवगत्या-नुपूर्वी १, दुर्भग १, निर्माण १, अयशःकीर्ति १, अनादेय १, प्रत्येक १, अपर्याप्त १, अगुरुलघु १, उपघात १, परघात १, उच्छ्वास १, वेदनीयकी अनुदयरूप १, नीचगोत्र १।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अयोगकेवलीके अन्तसमय समयमें सत्त्वव्युच्छिन्न १३ प्रकृतियां ये हैं—वेदनीयकी १, मनुष्यगति १, पंचेन्द्रिय जाति १, सुभग १, त्रस १, वादर १, प्रत्येक १, आदेय १, यशःकीर्ति १, तीर्थङ्करप्रकृति १, मनुष्यायु १, उच्चगोत्र १, मनुष्यगत्यानुपूर्वी १।

अयोगकेवली भगवानके देहकी अवगाहना ३॥ हाथसे ५२५ धनुष तककी हो सकती है। इस गुणस्थानमें जीवसमास सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होता है (इसमें वस्तुतः सैनी तो हैं नहीं, पञ्चेन्द्रिय द्रव्यकी अपेक्षासे हैं व पर्याप्त पहिले हो हो चुके थे, सो पर्याप्त देह जब तक रहता है पर्याप्त कहलाते हैं) पर्याप्ति ३, प्राण १ आयु, अपगतसंज्ञत्व, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय, त्रसकाय, अयोग, अपगतवेदत्व, अकषाय, केवलज्ञान, यथाख्यातचारित्र, केवलदर्शन, अलेश्य भव्यत्व, क्षायिकसम्यक्त्व होते हैं।

अयोगकेवली न संज्ञी हैं, न असंज्ञी हैं, अनाहारक हैं, युगपत् दोनों उपयोग वाले हैं।

अयोगकेवली गुणस्थानमें ध्यान प्रथम समयसे अन्त समय तक व्युपरतक्रियानिवर्ती शुक्लध्यान है। इस ध्यानका दूसरा नाम समुच्छिन्नक्रियानिवर्ती भी है। समस्त मन, वचन, काय, योग और श्वासोच्छ्वास नष्ट हो जानेसे प्रदेशपरिस्पंदक्रिया समुच्छिन्न अर्थात् व्युपरत याने निवृत्त हो जाती है, अतः इस ध्यानका नाम समुच्छिन्नक्रियानिवर्ती है। इस ध्यानमें एकाग्रचिन्तानिरोध नहीं होता है। इसी प्रकार १३वें गुणस्थानमें होने वाले सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यानमें भी एकाग्रचिन्तानिरोध ध्यान नहीं है, परन्तु ध्यानका कार्य निर्जरा होनेसे ध्यान संज्ञा उपचारसे है।

इस गुणस्थानमें आस्रव कोई नहीं, भाव १३ होते हैं।

अयोगकेवली भगवान ढाई द्वीपके भीतर ही होते हैं। इनका क्षेत्र, स्पर्शन लोकका असंख्यातवां भाग है।

इस गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त है अथवा पांच ह्रस्व स्वरोंके शीघ्र बोलनेमें जितना समय लगे, उतना है।

अयोगकेवली एक जीवका अन्तरकाल नहीं है। नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर अर्थात् ऐसा समय जब कि कोई भी जीव अयोगकेवली गुणस्थानमें न हो वह काल जघन्यसे एक समय है व उत्कृष्ट ६ माह होता है।

अयोगकेवली गुणस्थानका काल समाप्त होते ही अर्थात् व्युपरतक्रियानिवर्ती शुक्लध्यानका अन्त या अवशिष्ट सर्वकर्मक्षय होते ही अनन्तर गुणस्थानातीत सिद्ध हो जाते हैं।

१४वें गुणस्थान वाले जीव अप्रमत्त एकस्वरूप वीतराग केवलज्ञानी अयोग क्षायिकसम्यग्दृष्टि होते हैं।

इस प्रकार १४वें गुणस्थानका वर्णन करके अब परमाराध्य परमसाध्य सर्वथा निर्लेप अवस्थाको प्राप्त गुणस्थानातीत सिद्ध भगवानका निरूपण करते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

गुणस्थानातीत

अतीत हो गया है गुणस्थान जिनका उन्हें अतीतगुणस्थान कहते हैं। सिद्धपरमेष्ठी गुणस्थानसे अतीत हैं अतः वे अतीतगुणस्थान कहलाते हैं, ये द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मसे रहित अनंतचतुष्टयसम्पन्न सूक्ष्म, बाधारहित, अप्रतिघाती होते हैं। इनके देह तो है नहीं, किन्तु जिस देहसे मुक्त हुए हैं कुछ कम उस देहके प्रमाण आत्माके प्रदेश हैं।

अवशिष्ट कर्मोंसे मुक्त होते ही अनंतर समयमें लोकके अंतमें पहुंच जाते हैं। बीचमें एक भी समय नहीं लगता। जिस स्थानसे मुक्त हुए हैं उसी स्थानकी सीधके ऊपर लोकशिखर पर बिराजमान रहते हैं। ये अनन्त निष्प्रकंप सर्वज्ञ सर्वदर्शी अनंतसुखी अनंतशक्तिमय होते हैं।

इस लोकके ऊपर भी ३ वातवलय हैं——१. घनोदधिवातवलय, २. घनवातवलय, ३. तनुवातवलय। वह घनोदधिवातवलय २ कोशका मोटा है, घनवातवलय १ कोशका मोटा है, तनुवातवलय १५७५ धनुषप्रमाण मोटा है। यह तनुवातवलय दोनो वलयोंके ऊपर है। यह मोटाई प्रमाणाङ्गुलकी अपेक्षा है, व्यवहाराङ्गुलकी अपेक्षा १५७५ × ५०० = ७८७५०० धनुष प्रमाण वाहल्य है। इतने मोटे तनुवातवलयमें ढाई द्वीपके सीधमें बिल्कुल ऊपर ३॥ हाथ मोटेमें जघन्य अवगाहना वाले सिद्ध हैं और ५२५ धनुष मोटेमें उत्कृष्ट अवगाहनावाले सिद्ध

http://www.jainkosh.org

हैं।

जो अयोगकेवली जिस आसनमें कर्मोंसे मुक्त हुए हैं उसी आसनके आकारसे सिद्धलोकमें विराजमान हो जाते हैं।

अतीतगुणस्थानमें अतीतजीवसमास, अतीतपर्याप्ति, अतीतप्राण, अपगतसंज्ञ, गतिरहित, अतीतेन्द्रिय, अकाय, अयोग, अपगतवेद, अकषाय, केवलज्ञानी, संयम असंयम संयमासंयम तीनोंसे रहित, केवलदर्शनी, अलेश्य भव्यत्व, अभव्यत्व दोनोंसे रहित, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी दोनोंसे रहित, अनाहारक, युगपत् दोनों उपयोग वाले, अतीतध्यान, निरास्रव होते हैं।

अतीतगुणस्थानमें भाव क्षायिक ९ व जीवत्व ये १० होते, परन्तु अभेदविवक्षामें क्षायिकवीर्यमें शेष ४ लब्धियों व क्षायिक सम्यक्त्वमें चारित्रका अन्तर्भाव है, अतः ५ भाव प्रसिद्ध हैं।

सिद्धक्षेत्र मनुष्यलोकप्रमाण ४५ लाख योजनप्रमाण मनुष्यलोककी सीधमें लोकके अन्तमें है, क्योंकि आत्मा मनुष्यलोकसे ही अतीतगुणस्थान होते हैं।

लवणसमुद्रसे सिद्ध होने वालोंकी संख्या सबसे कम है, फिर भी अनन्त है, उससे संख्यातगुणे सिद्ध कालोद समुद्रसे हुए, उससे संख्यातगुणे सिद्ध जम्बूद्वीपसे हुए, उससे संख्यातगुणे सिद्ध धातकी खंडसे हुए, उससे संख्यातगुणे सिद्ध पुष्कराद्धंद्वीपसे हुए हैं।

तिर्यंगतिके अनन्तर मनुष्य होकर मुक्त होने वाले सबसे

Version 1

कम हैं, फिर भी ये अनन्त हैं उससे संख्यातगुणे सिद्ध मनुष्यगतिके अनंतर मनुष्य होकर हुए हैं, उससे संख्यातगुणे सिद्ध नरकगतिके अनंतर मनुष्य होकर हुए हैं, उससे संख्यातगुणे देवगतिके अनन्तर मनुष्य होकर मुक्त हुए हैं।

मतिज्ञान व श्रुतज्ञान इन दोनों ज्ञानके धारक साधु केवली होकर मोक्ष गये हैं, वे सबसे कम हैं, फिर भी अनन्त हैं। उससे संख्यातगुणे मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय—इन चार ज्ञानोंके धारी होकर पश्चात् केवली होकर मोक्ष गये। उनसे संख्यातगुणे मति, श्रुत, अवधि—इन तीन ज्ञानके धारी साधु केवली होकर मोक्ष गये हैं।

यह सिद्ध अवस्था सर्वथा अत्यन्त निर्मल पूर्ण सुखकी पवित्र अवस्था है, ज्ञानी आत्माओंकी अन्तिम पूर्ण विश्रामकी अवस्था वही है। इसकी प्राप्ति आत्मस्थिरतासे होती है। आत्मस्थिरता सम्यग्दर्शनके अनुभवसे होती है। सम्यग्दर्शन आत्मस्वभावके परिचयसे प्रकट होता है। आत्मस्वभाव आत्माकी पर्यायोंमें गत है। जिसके परिणमन अनन्त होते चले जाते है, फिर भी उनमें स्वभाव एक है जो परिणमता चला जाता है। इस आत्मस्वभावका परिचय तत्त्वोंको भूतार्थनयसे जानने पर होता है। इस पुस्तकमें पर्यायोंका परिज्ञान किया गया है। वे पर्याय जिस गुणकी हैं उस गुणको मुख्य करके पर्यायोंको गुणोंमें लीन करना व गुणोंको गुणोंके अभिन्न आधाररूप

अभेद आत्मद्रव्यको लक्ष्य करके उसमें विलीन करना, यही पुरुषार्थ है। इस उपायके पश्चात् निर्विकल्प होकर आत्मस्वभावको कारणरूपसे उपादान करके स्वयं परिणमते हुए केवलज्ञानमय उपयोगसे परिणमन कर अनन्त सुखी होवेगा।

इस जीवनमें सम्यग्ज्ञानका प्रयत्न करना सबसे बड़ा व्यवसाय है। सभी ज्ञाता आत्मावोंको संसार देह भोगसे विरक्त होकर आत्मामें स्थितिके लिये ज्ञाताद्रष्टा बने रहनेरूप पुरुषार्थ करना चाहिये।

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ गुरुवर्य्य पूज्यश्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज
द्वारा रचित गुणस्थानदर्पण समाप्त।

अपनी बातचीत

गुणस्थान दर्पणके रचयिता
अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज
द्वारा विरचित एक ट्रेक्ट

अयि आत्मन् ! तू क्या है ? विचार ! ज्ञानमय पदार्थ ! तेरा इन दृश्योंके साथ क्या कोई सम्बन्ध है यथार्थ ? नहीं, नहीं, कुछ भी सम्बन्ध नहीं। क्यों नहीं ? क्योंकि कोई किसी का कुछ भी परिणमन कर नहीं सकता।

मैं ज्ञानमय आत्मा हूं, हूं, स्वयं हूं, इसलिये अनादिसे हूं। मैं किसी दिन हुआ होऊं, पहिले न था, यह बात नहीं। न था तो फिर हो भी नहीं सकता।

फिर ध्यान दे—इस नरजन्मसे पहिले तू था ही। क्या था ? अनन्तकाल तो निगोदिया रहा। वहाँ क्या बीती ? एक सेकिण्डमें २३ बार पैदा हुआ और मरा। जीभ, नाक, आंख, कान, मन तो था ही नहीं और था शरीर। ज्ञानकी ओर से देखो तो जड़सा रहा, महासंक्लेश ! न कुछसे बुरी दशा। सुयोग हुआ तब उस दुर्दशासे निकला।

पृथ्वी हुआ तो खोदा गया, कूटा गया, ताड़ा गया, सुरंगसे फोड़ा गया।

http://www.jainkosh.org

जल भी तो तू हुआ, तब औटाया गया, बिलोरा गया, गर्म आग पर डाला गया।

अग्नि हुआ तब पानीसे, राखसे, धूलसे बुझाया गया, खुदेरा गया।

वायु हुआ, तब पंखोंसे, बिजलियोंसे ताड़ा गया, रबर आदिमें रोका गया।

पेड़, फल, पत्र जब हुआ, तब काटा, छेदा, भूना, सुखाया गया।

कीड़े भी तो तुम्हीं बने और मच्छर, मक्खी, बिच्छू आदि भी। बताओ कौन रक्षा कर सका ? रक्षा तो दूर रही, दवाइयाँ डाल-डालकर मारा गया, पत्थरोंसे, जूतोंसे, खुरोंसे दबोचा व मारा गया।

बैल, घोड़े, कुत्ते आदि भी तो तू हुआ। कैसे दुःख भोगे ? भूखे, प्यासे रहे, ठंडों मरे, गर्मियों मरे, ऊपरसे चाबुक लगे, मारे गये। शूकर मारे जाते हैं चलते-फिरतोंको छुरी भोंककर। कहीं जिन्दा ही आगमें भूने जाते हैं।

यह दूसरोंकी कथा नहीं, तेरी है। यह दशा क्यों हुई ? मोह बढ़ाये, कषाय किये, खाने-पीने, विषयोंकी धुन रही, नाना कर्म बाँधे, मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्यसेवन किये। बड़ी कठिनाईसे यह मनुष्यजन्म मिला तब यहाँ भी मोह, राग, द्वेष, विषयकषायकी ही बता रही तब जैसे मनुष्य हुए न हुए बरा-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बर है ।

कभी ऐसा भी हुआ कि तूने देव होकर या राजा, सम्राट, धनपति होकर अनेक संपदाएँ पाईं, परन्तु वे सभी संपदायें थीं तो असार और क्लेशकी कारण ? इतनेपर भी उन्हें छोड़कर मरना ही तो पड़ा ।

अब तो पाया ही क्या ? न कुछ । न कुछमें व्यर्थ लालसा रखकर क्यों अपनी सर्वहानि कर रहे हो ?

आमत्न् ! तू स्वभावसे ज्ञानमय है, प्रभु है, स्वतंत्र है, सिद्ध परमात्माकी जातिका है । क्या कर रहा ? उठ, चल अपने स्वरूपमें बस ।

तू अकेला है, अकेला ही पुण्य-पाप करता, अकेला पुण्य-पाप भोगता; अकेला ही शुद्ध स्वरूपकी भावना करता, अकेला ही मुक्त हो जाता ।

देख, चेत, पर पर ही हैं, परमें निजबुद्धि करना ही दुःख है, स्वयंमें आत्मबुद्धि करना सुख है, परम अमृत है ।

वह तू ही तो स्वयं है । परकी आशा तज, अपनेमें मग्न होनेकी धुन रख ।

सोच तो यही सोच—परमात्माका स्वरूप, उसकी भक्ति में रह । लोगोंको सोच, तो उनका जैसे हित हो उस तरह सोच ।

बोल तो यही बोल—शुद्धात्माका गुणगान......इसकी

स्तुतिमें रह । लोगोंसे बोल तो हित, मित, प्रिय वचन बोल ।

कर तो ऐसा कर जिसमें किसी प्राणीका अहित न हो, घात न हो । अपनी चर्या धार्मिक बनाओ ।

तू शुद्ध चैतन्यस्वभावी है, सहजभावका अनुभव कर जप, जप—"शुद्धचिद्रूपोऽहम्" ॐ शुद्धं चिदस्मि ।

॥ शिवमस्तु ॥

मुद्रक:—नवयुगान्तर प्रेस शारदा रोड, मेरठ ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मधुन

सच्चिदानंद हूँ, ज्ञानानन्द। दर्शनानन्द हूँ, सहजानन्द ॥टेक॥

चेतनामात्र हूँ, हूं अखण्ड पिण्ड।
हूं अनन्त शक्ति सत्य, रत्नका करण्ड ॥सच्चिदा०॥१॥

ध्रुव निरंजन अमल, ज्योतिका हूँ पुञ्ज।
निर्विकार निराकार, सदानन्दकुञ्ज ॥सच्चिदा०॥२॥

आप ही में आपसे आप ही निर्द्वन्द।
शोक रोग राग द्वेष, कोई नहीं फन्द ॥सच्चिदा०॥३॥

पूर्णमें ही पूर्णसे, पूर्णका प्रवाह।
पूर्ण था पूर्ण रहेगा सदा अथाह ॥सच्चिदा०॥४॥

ज्ञानमात्र ज्ञानपूर्ण, ज्ञानमय अभिन्न।
हूँ निरंग निस्तरंग, ज्योति हूँ अखिन्न ॥सच्चिदा०॥५॥

Version 1